CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का०
106

॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

गोपीगीत एवं वेणुगीत

श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचित श्रीसुबोधिनीजीका हिंदी भाषान्तर

नाश्रितो वल्लभाधीशो न च दृष्टा सुबोधिनी ।
नाराधि राधिकानाथो वृथा तज्जन्मभूतले ॥

सम्पादक—

महामहोपदेशक पं० श्रीमाधव शर्मा गीताज्ञानसूरि

प्रकाशक—

पं० परमानन्द शर्मा

(सर्वाधिकार सुरक्षित है ।)

प्रधान सहायक—लखनऊ निवासी रस्तोगीकुलभूषण, स्वधर्मनिष्ठ, विद्यानुरागी

प्रो० राधेश्यामजीका सादर भगवत्स्मरण

न्योछावर २।)] श्रीब्रह्मसम्बन्ध-जयन्ती [वि० सं० २०१६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्री गोवर्द्धननाथजी—श्रीनाथजी

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी—श्रीमहाप्रभुजी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सविनय-निवेदन

श्रीमन्महाप्रभु विरचित श्रीसुबोधिनीजीका प्रकाशन हिन्दी भाषामें करनेकी आवश्यकता है। वैष्णवमंडलियोंमें तथा वैष्णव महानुभाव अपने घरोंमें बैठकर श्रीसुबोधिनीजीके रसास्वादन करनेके लिये सदैव उत्सुक रहते हैं। मूल ग्रन्थ संस्कृत भाषामें है, गुजराती भाषा में कुछ विद्वानोंने भाषान्तर प्रकाशित किये हैं। मूल ग्रन्थ तथा गुजराती भाषान्तरकी सहायतासे सरल हिन्दी भाषामें श्रीसुबोधिनीजीके प्रकाशन करनेकी यह योजना की गयी है।

इस प्रकाशनका पुनः कार्यारम्भ लखनऊ निवासी रस्तोगीकुलभूषण परम भगवदीय प्रोफेसर राधेश्यामजी रस्तोगीके विशेष प्रोत्साहनसे किया गया है। प्रथम कुछ अध्याय स्वतंत्र तथा श्रीकृष्ण मासिक पत्रमें कुछ अंश प्रकाशित हुआ था, उनका समुचित आदर हुआ था। अब नवीन उत्साह तथा व्यवस्थाके साथ इस ग्रन्थमालाके रूपमें प्रकाशनकी व्यवस्था की गयी है। इस कार्यमें सहायक तथा संरक्षक वैष्णवोंकी नामावली भी ज्यों-ज्यों सहायता प्राप्त होगी त्यों-त्यों प्रकाशित करेंगे।

अपने सम्प्रदायके अनेक अनुयायी श्रीसुबोधिनीजीके श्रवण करनेके लिये उत्सुक रहते हैं। आचार्यश्रीकी इस वाक्सुधाका पान करनेकी इच्छा रहने पर भी प्रवचनकर्त्ताओंका समागम दुर्लभ होनेके कारण अपनी अभिलाषाको पूर्ण नहीं कर सकते, यह विचार कर गुजराती भाषामें कई विद्वान् महानुभावोंने श्रीसुबोधिनीजीके अनुवाद प्रकाशित किये हैं, जिससे वैष्णव मंडलियोंमें तथा वैष्णवोंके घरोंमें सुबोधिनीजीका सत्संग सुलभ हुआ है। हिन्दी भाषा-भाषी वैष्णव महानुभावोंकी संख्या अधिक है वे हमारे इस भाषान्तरसे यथोचित लाभ उठा सकेंगे। भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दी हो गयी है, और सभी प्रान्तके वैष्णव तथा भागवत प्रेमी हिन्दी भाषामें अनुवादित इस ग्रन्थमालासे लाभ उठा सकते हैं।

श्रीमद्वल्लभगीताके विविध संस्करण

श्रीमन्महाप्रभु विरचित षोड़शग्रन्थका नाम श्रीमद्वल्लभगीता है। इस गीताके मूल ग्रन्थ, सरल हिन्दी भावार्थ, हिन्दी अन्वयार्थ तथा सविस्तर हिन्दी भाषामें विवेचनके कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं और होते रहेंगे। इस समय (१) श्रीमद्वल्लभगीता एवं विविध स्तोत्राणि-नया संस्करण सचित्र न्यो० ।ॢ) यह ग्रन्थ बड़े अक्षरोंमें छपा है। प्रत्येक वैष्णवोंके नित्यपाठके लिये तथा साम्प्रदायिक पाठशालाओंके लिये परमोपयोगी है। (२) श्रीमद्वल्लभगीता-मूल, पदच्छेद, हिन्दी अन्वयार्थ एवं सरल भावार्थ सहित नया संस्करण सचित्र न्यो० १।।) है। यह ग्रन्थ बिना अध्यापकके जो सज्जन षोड़शग्रन्थका अर्थ पढ़ना चाहें उनके लिये परमोपयोगी है। सविस्तर हिन्दी विवेचन शीघ्र ही प्रकाशित होगा। तथा श्रीमद्वल्लभगीता मूल तथा भावार्थ भी शीघ्र प्रकाशित होगा। यमुनाष्टक एवं यमुनाजीके ४० पदका नया संस्करण प्रकाशित हुआ है, सचित्र। न्यो ।ॢ)

परमानन्द शर्मा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीकृष्ण कार्यालय के सदस्य

श्रीकृष्ण कार्यालयके द्वारा "श्रीसुबोधिनी ग्रन्थमाला" तथा "श्रीकृष्ण वल्लभ ग्रन्थमाला" का प्रकाशन हो रहा है। इन दोनों ग्रन्थमालाओं के ग्रन्थ स्थायी सदस्योंको भेजे जाते हैं। १०) दस रुपया मनियार्डर से भेजकर सदस्य बनने वालोंको मार्ग व्यय नहीं देना पड़ता है साथ ही सुबोधिनी ग्रन्थमाला में उनके सादर भगवत्स्मरण भी प्रकाशित किये जाते हैं। श्रीकृष्ण कार्यालय द्वारा प्रकाशित ग्रन्थोंसे जो आय होती है तथा जो विशेष सहायता प्राप्त होती है उनका उपयोग इसी कार्य में किया जाता है।

१—श्रीमान् गो० श्री १०८ श्री पुरुषोत्तमलालजी महाराज—कोटा।
२—श्री० गोस्वामिकुमार श्री गोविंदलालजी, कड़ी।
३—श्री० प्रोफेसर राधेश्यामजी रस्तोगी, लखनऊ।
४—श्री० विट्ठलदासजी रस्तोगी, लखनऊ
५—श्री दामोदरदासजी रस्तोगी, लखनऊ
६—श्रीयुत् शेठ चीमनलाल हरगोविन्ददासजी, पूना।
७—श्रीयुत् बाबू ग्वालदासजी मुदड़ा, कलकत्ता
८—श्रीयुत् बाबू गिरधरदासजी मुदड़ा, कलकत्ता।
९—श्रीयुत् बाबू दामोदरदासजी मुदड़ा, कलकत्ता।
१०—श्रीयुत् बाबू घनश्यामदासजी मुदड़ा, बिकानेर।
११—श्री० मोहिनी देवी लाहोरी, कलकत्ता।
१२—श्री० सुशीला देवी झूमरा, कलकत्ता।
१३—श्री० गायत्री देवी झूमरा मद्रास।
१४—श्रीयुत् चीमन भाई M. पटेल, सोजित्रा।
१५—श्रीयुत् शेठ रमणलाल गिरधरलाल पारिख, बड़ोदा।
१६—श्रीयुत् शेठ छोटालाल हीरालाल भाई पटेल, बड़ोदा।
१७—श्रीयुत् शेठ रावजी भाई देसाई भाई पटेल,
१८—श्रीयुत् शेठ छोटालाल भाई लाल भाई पटेल, बड़ोदा।
१९—श्रीयुत् सेठ राधाकिशनजी राठी, पिपरिया।
२०—श्री० शकुन्तला मोहता, खामगाँव।
२१—श्रीयुत् गोपालदासजी झालानी इन्दौर।
२२—श्रीयुत् सेठ छगनलाल अमरसी, भाणवड़।
२३—श्रीयुत् बाबू गजाननजी अग्रवाल, वाराणसी।
२४—श्रीयुत् बाबू रामकृष्णदासजी नागर, वाराणसी।
२५—श्रीयुत् बाबू प्रह्लाददासजी अग्रवाल, वाराणसी।
२६—श्रीयुत् बाबू कृष्णदासजी अढ़तिया, वाराणसी।
२७—श्रीयुत् बाबू द्वारकादास बलदेवदास (राणासाव), वाराणसी।
२८—श्रीयुत् बाबू ठाकुरदासजी (सोनावाले), वाराणसी।
२९—श्रीयुत् बाबू मुकुन्ददासजी मोढ़ वाराणसी।
३०—श्रीयुत् बाबू हीरालालजी अग्रवाल (गोरखपुरवाले), वाराणसी।

पुष्टिमार्गीय संस्थाओंके संचालकोंके प्रति निवेदन

आप स्वयं सदस्य बनें तथा वैष्णव बंधुओंको सदस्य बननेकी सूचना देकर इस साहित्य प्रचारक संस्थाके सहायक बनें। वैष्णव मंडली तथा साम्प्रदायिक मन्दिरोंके अधिकारियोंसे भी निवेदन है कि वे भी इस कार्यमें यथोचित सहयोग प्रदान करें।—व्यवस्थापक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

श्री सुबोधिनी ग्रन्थमाला के प्रधान सहायक

परम भगवदीय प्रोफेसर राधेश्यामजी रस्तोगीका परिचय

अखण्ड भूमण्डलाचार्यवर्य श्रीमन्महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणके अनुयायी शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय एवं पुष्टिमार्गके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखने वाले अनेक वैष्णव महानुभाव भारतके भिन्न-भिन्न प्रदेशों में निवास कर रहे हैं। इन भगवदीय महानुभावों की संख्या अनुमान एक करोड़ तक है। ये दैविसंपत्तिसम्पन्न वैष्णवोंकी भगवत्स्वरूप सेवापराणयता, तथा आचार्य श्रीके वचनामृतोंके प्रति परमानुराग प्रसिद्ध है। भारतके कुछ गाँवके गाँव तथा कई ज्ञाति समुदायके समुदाय इस सम्प्रदाय के अनुयायी देखे जाते हैं। उदाहरण रूपमें भाटिया जाति तथा रस्तोगी जातिके समुदायका समुदाय पुष्टिमार्ग का अनुयायी है।

हमारे उपरोक्त कथन की यथार्थता उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ नगर की रस्तोगी जाति में आप प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। लखनऊ तथा उनसे संबंधित कई नगर तथा ग्रामोंमें जो रस्तोगी जाति के घर हैं उनमें समस्त नर-नारी पुष्टि मार्गीय वैष्णव हैं। इस जाति के आचार विचार तथा भगवत्सेवा में अनुराग सर्वथा प्रशंसनीय है। इस रस्तोगी जाति के भाइयों की आर्थिक स्थिति भी उत्तम है। लखनउके कुछ प्राचीन रहीस एवं व्यवसायी कुटम्बोंमें यह परम्पराकी श्रद्धाभक्तिके प्रमाण आज भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। श्रीनाथजी एवं सम्प्रदायके सभी भगवत्स्वरूपोंकी तथा गोस्वामिबालकोंकी वित्तजा सेवा तथा परोपकारके कार्य लखनउ के वैष्णवोंके द्वारा उत्तम प्रकार से हो रहे हैं।

लखनऊ नगरकी रस्तोगी जातिमें एक प्राचीन वैष्णव कुल में आदर्श वैष्णव महानुभाव लाला रघुवरदयालजी वैष्णवका शुभ नाम विख्यात है। लाला रघुवरदयालजी के नाम के अन्तमें रस्तोगीके स्थान में वैष्णव नाम प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपनी स्वधर्मपरायणता तथा यथोचित व्यवसायके द्वारा अच्छा धनोपार्जन किया और उस धनका उपयोग विशेषतया भगवत्सेवा तथा परोपकारमें किया। जिस समय इस जातिके कुछ बन्धु विशेष रूप से अर्थोपार्जन को मुख्य समझ रहे थे और सामयिक विद्याध्ययनकी तरफ कम कुटुम्बोंका ध्यान था उस समय लाला रघुवरदयालजी ने अपने पुत्रोंको सामयिक शिक्षा अर्थात् अंग्रेजी भाषाकी उच्च शिक्षा देने की व्यवस्था कर अपने पुत्रों को लक्ष्मी के साथ सरस्वती के उपासक बनाकर अपनी जाती में एक आदर्श स्थापित किया जो लखनऊ में सुप्रसिद्ध है, और इसका प्रमाण हमारे परम प्रिय प्रोफेसर राधेश्यामजी रस्तोगी हैं।

आपका जन्म १५ अक्टूबर सन् १९०६ में हुआ। भाई राधेश्यामजी ने अंग्रेजी शिक्षा में लखनऊ विश्वविद्यालय से सन् १९२५ में प्रथम श्रेणी में बी० ए० पास किया और सन् १९२७ में एम० ए० प्रथम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रेणी में सफलता प्राप्तकर उसी साल लखनऊ विश्वविद्यालयमें अंग्रेजी विभाग में प्रोफेसर हुए। आपने एम० ए० एल०-एल० बी० की परीक्षा भी दी किन्तु वकालत का कार्य अपने मनोनुकूल न होने के कारण तथा विद्याव्यसन के कारण सात्विक कार्य समझकर विश्वविद्यालयमें अध्यापकका कार्य स्वीकार किया, जिसे योग्यतापूर्वक कर रहे हैं।

श्रीमान् राधेश्यामजी सन् १९३४ में यू० पी० कौंसिल के मेम्बर पद पर नियुक्त किये गये। आपका विश्वविद्यालयमें तथा विद्वद्समाज में एवं समाजसेवकों में अच्छा आदर है। आप संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के अध्ययनशील एवं अनुरागी हैं, आपने हिन्दी भाषा में कृष्ण शरणाष्टक, नन्दकुमाराष्टक, गोविन्द दामोदर इत्यादि कई संस्कृत स्तोत्रों का हिन्दी कवितामें अनुवाद किया है, और धर्म, नीति सदाचार संबंधी शिक्षाप्रद अनेक कविताएँ लिखी हैं उन कविताओं का संग्रह प्रकाशित करने का हमारा विचार है।

भाई राधेश्यामजीका जीवन भी अपने पूज्य पिता के आदर्श के अनुरूप देखा जा रहा है। लखनऊ निवासी सभी जानते हैं कि लाला रघुवरदयाल अपने परलोकवास होने के २० वर्ष पूर्व अपना सब कारबार छोड़कर अपना समय श्रीनाथ द्वारा, मथुरा एवं यात्रा के स्थलों में व्यतीत करते थे। प्रोफेसर राधेश्यामजी भी यथा अवसर मथुरा, काशी, हरद्वार वगैरह स्थलों में जाया करते हैं और पिता जी के अनुसार दान-पुण्य करने के उपरान्त स्वयं विद्वान् होने के कारण विद्या प्रचार और धार्मिक ग्रन्थों के प्रकाशन में आर्थिक सहायता प्रदान कर रहे हैं।

श्रीसुबोधिनी ग्रन्थमाला के प्रकाशन में आपका प्रधान प्रोत्साहन है और इस कार्य को चालू रखने के लिये अच्छी आर्थिक सहायता प्रदान कर हिन्दी भाषा में धार्मिक ग्रन्थों के प्रकाशन में हमें प्रोत्साहित कर अनुकूलता प्रदान की है जिसके लिये आपको धन्यवाद देने के साथ ही अपने सम्प्रदाय की इस सामयिक सेवा हिन्दी भाषा-भाषी वैष्णव समाज के लिये आदर्श रूप है।

श्रीमन्महाप्रभुने जिस पुष्टिमार्ग का प्रचार अधिकाधिक बढ़े इस निमित्त आपने विविध ग्रन्थों की रचना की है तथा आपके वंशज एवं अनुयायी विद्वानोंने जो अनेक ग्रन्थ लिखे हैं उनका राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित करने से सम्प्रदाय के तत्व जिज्ञासुओं को लाभ हो सकता है। स्वरूप सेवा के समान यह नाम सेवा है, इस सेवामें मैंने अपना जीवन समर्पण किया है और गत् ६२ वर्षों से मैं यह सेवा कर रहा हूं, मेरी इस सेवा अथवा मनोरथमें कई वैष्णव बंधुओंने मुझे सहयोग दिया है उनमें अन्तिम सहयोग प्रदान करनेवालोंमें भगवदीय प्रोफेसर राधेश्यामजी प्रधान हैं। इन्हें मेरा शुभाशिर्वाद पूर्वक शतसः अभिनंदन है।

श्रावण शुक्ला ११,
वि० सं० २०१६

माधव शर्मा का
सादर भगवत्स्मरण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

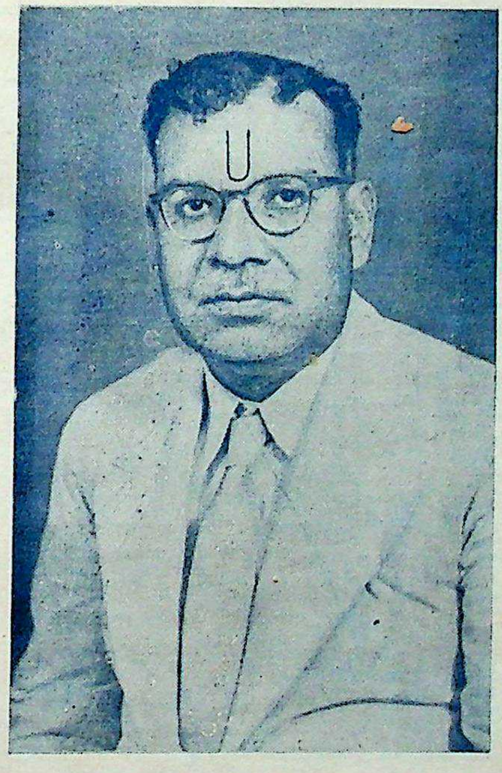

प्रो० राधेश्यामजी रस्तोगी, लखनऊ

(श्री सुबोधिनी ग्रन्थमालाके प्रधान सहायक)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

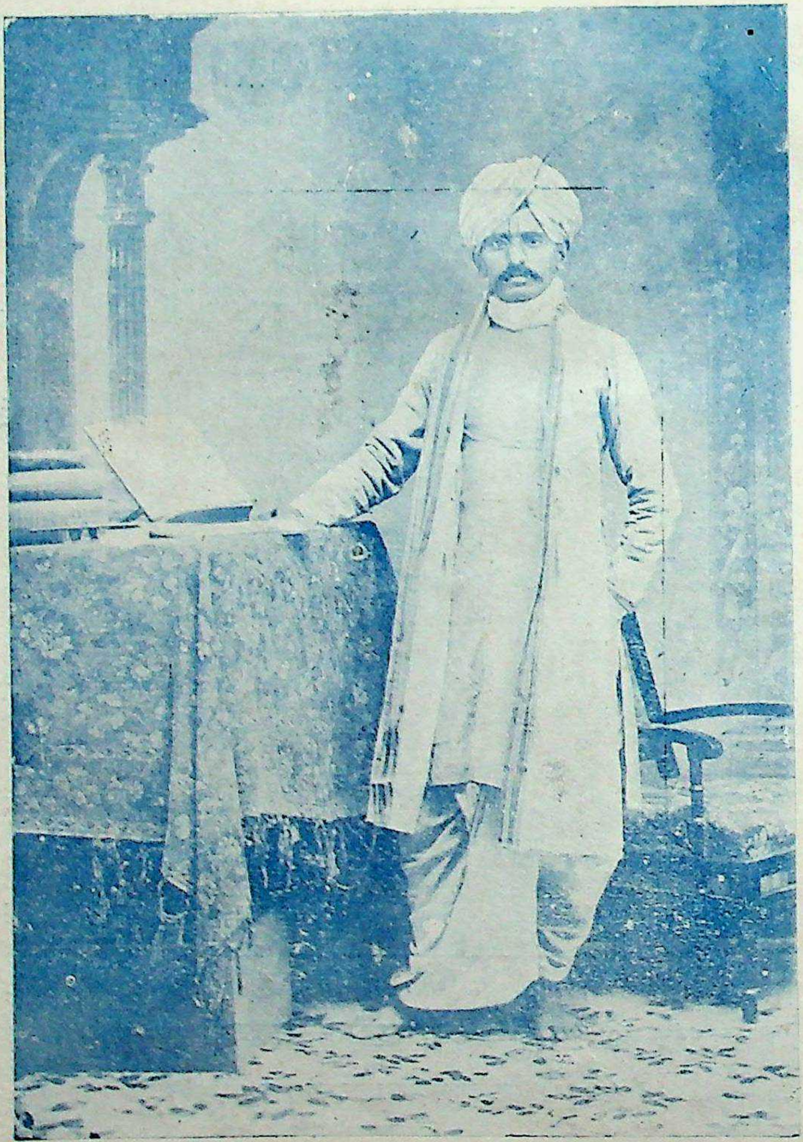

❀ महामहोपदेशक पण्डित श्रीमाधव शर्मा गीताज्ञानसूरि ❀

(सम्पादक—श्रीसुबोधिनी ग्रन्थमाला एवं श्रीकृष्ण मासिकपत्र)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

※ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ※

गोपीगीत-सुबोधिनीजी

प्रस्तावना

श्रीमद्भागवत भगवानका स्वरूप ही है। भगवानकी इस वाङ्मयीमूर्त्तिका महत्त्व सुप्रसिद्ध है। श्रीमन्महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने श्रीमद्भागवतका यथार्थ स्वरूप तथा उसके अर्थका भलीभाँति विवेचन किया है। श्रीद्भागवत आद्यपुराण है। प्रथम उत्पन्न हुए ब्रह्माजीको स्वयं भगवानने श्रीमद्भागवत कहा है। श्रीभागवतको ब्रह्माने नारदजीके प्रति कहा है और नारदजीने वेदव्यासजीके प्रति संक्षेपसे कहकर उसका विस्तार करनेके लिये कहा है। इसी श्रीमद्भागवतको व्यासजीने अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढ़ाया है एवं शुकदेवजीने राजा परीक्षितको श्रवण कराया है। श्रीमद्भागवत सूत पुराणीने शौनकादि ऋषियोंके प्रति कहा है। श्रीमद्भागवत महापुराण है, पुराणोंका शिरोभूषणरूप है और वैष्णवोंका परम धन है। ज्ञान वैराग्य सहित भगवद्भक्तिको बढ़ानेवाला यह सर्वोपरि भक्तिशास्त्र है।

श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवत्प्रोक्त है। भगवद् वाणी है। इस श्रीमद्भागवतके गूढ़ार्थको समझानेके लिये श्रीभागवतगूढ़ार्थप्रकाशनपरायण, श्रीभागवतप्रतिपदभावांशुभूषितामूर्ति, विभुवदनावतार श्रीवल्लभाधीशने कृपा करके इसका तत्त्व समझानेके लिये तत्त्वदीप निबन्धान्तर्गत भागवतार्थ प्रकरण ग्रन्थकी रचना की है और श्रीसुबोधिनी नामक विस्तृत व्याख्या लिखी है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणने अपने भागवतार्थ समझानेके लिये तत्त्वदीपनिबन्धान्तर्गत भागवतार्थप्रकरण और श्रीसुबोधिनीजीके विषयके सम्बन्धमें आज्ञा की है कि—

"भागवतार्थे अज्ञाते अन्यथा ज्ञाते च भक्तिर्न भवति, अधिकारेऽपि जाते फलं न भविष्यति इति मयोपायः क्रियते, तत्वार्थो विविच्योच्यते, यस्मिन् ज्ञाते सर्वथा भक्तिर्भवत्येव। नापि जाता भक्तिस्तुष्णीं तिष्ठति तादृशी भविष्यति या लतावत् प्रत्यहं वृद्धिमायान्ती शीघ्रं कृष्णाख्यं फलिष्यति, अतो भक्तीच्छायां सर्वथैतदनुसन्धेयम्"।

श्रीमद्भागवतका अर्थ न जाननेसे अथवा विपरीतरीतिसे जाननेसे भक्ति उत्पन्न नहीं होती। अधिकार प्राप्त होनेपर भी फल प्राप्त न होगा। अतएव मैं इसके लिये उपाय करता हूं। भागवतका तत्त्वार्थ विवेचनपूर्वक कहता हूँ। जिसके जाननेसे सर्वथा भक्ति होगी ही और वह भक्ति वैसी ही न रहकर लताके समान प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होती हुई शीघ्र कृष्णरूप फल देनेवाली होगी। इसलिये जिनको भक्तिकी इच्छा हो वे सर्वथा इस ग्रन्थका अनुसन्धान करें। श्रीमदाचार्यचरणने शास्त्रार्थ, स्कन्धार्थ, प्रकरणार्थ, और अध्यायार्थ निबन्धमें समझाया है और वाक्यार्थ-पदार्थ एवं अक्षरार्थ श्रीसुबोधिनीजीमें समझानेंकी कृपा की है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धमें भगवत् कृत विशेष लीलाका वर्णन है इसके तामसफल प्रकरणके अन्तर्गत गोपीगीत सुप्रसिद्ध है। दशमस्कन्धमें वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, और भ्रमरगीत श्रीगोपीजनोंके द्वारा गाये हुए सर्वोत्तम गीत हैं। इन चारों गीतका पाठ श्रीकृष्णप्रेमी भक्तजन करते हैं। हमने इन चारों गीतोंके श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके सुबोधिनीजी व्याख्याको हिन्दीभाषामें प्रकाशित करनेका दीर्घकालसे जो विचार कर रक्खा था, उसमेंसे इस गोपीगीतके प्रकाशन करनेका आज शुभ अवसर प्राप्त हुआ है।

गोपीगीतमें गोपिकाओंके जिस विशुद्ध एवं दिव्य भगवत् प्रेमका वर्णन है वह परममाननीय है। पुष्टिमार्गमें गोपिकाएँ गुरु हैं और उन्होंने जो साधन भगवत् प्राप्तिके निमित्त किया है वही सर्वोपरि साधन है। श्रीगोपिजनोंने संयोग तथा विप्रयोगकी अवस्थामें जिस प्रकार भगवत् सुखका आस्वाद प्राप्त किया है वह सर्वोपरि है। श्रीगोपीजनोंके स्वरूप तथा श्रीगोपीजनोंके श्रीकृष्णानुरागका प्रसंग, श्रवण कीर्तन एवं मनन करने योग्य है। श्रीगोपी-जनोंके श्रीकृष्णप्रेमका परिचय अनेक विद्वान् महात्माओंने तथा भगवद् भक्तोंने अपनी वाणीमें जो किया है वह सर्वथा मननीय है।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणने वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र एवं श्रीमद्भागवत शास्त्रको प्रमाणरूप मानते हुए उत्तरोत्तर शास्त्र संदेहकी निवृत्ति करनेवाले हैं, यह समझाकर श्रीमद्भागवतको परिपूर्णरूपसे संदेहनिवारक एवं परम प्रमाणरूप समझाया है। आचार्यश्रीके अनुयायियोंको चाहिये कि नियम पूर्वक आदरके साथ श्रीमद्भागवतका पाठ एवं श्रवणादि करें। अधिक न हो सके तो इन चारों गीतोंका पाठ अवश्य करें। इनके अर्थ पर मनन करें और इन गीतोंमें श्रीगोपिजनोंने भगवत् साक्षात्कारके लिये, भगवानके दर्शनके लिये जो आतुरता एवं दीनतादि प्रगट किया है उसकी भावना करें। भगवानकी प्राप्तिके लिये गोपीगीतमें जो भाव प्रदर्शित किया है तथा श्रीगोपीजन इस गीतके द्वारा गुणगान करती हुई अन्तमें जैसा कि शुकदेवजी-ने कहा है तदनुसार दीनतापूर्वक उनके दर्शनकी अभिलाषासे रुदन किया। जो भक्त इस भावको हृदयमें धारणकर भगवद् दर्शनके लिये आतुर होंगे उनको गोपिकाओंके समान भगवानकी प्राप्ति होगी।

श्रीगोपीगीतके श्रीसुबोधिनीजीका जो अनुवाद यहाँ पर प्रकाशित किया जाता है उसमें हमें भगवच्छास्त्रनिष्णात विद्वद्वर श्री० गोविन्दलाल हरगोविन्द भट्ट एम० ए० के गुजराती अनुवादसे पूर्ण सहायता प्राप्त हुई है। सुहृद्वर शास्त्री वल्लभदास मगनलाल मातरनिवासीने इस भाषान्तर के लिये प्रथम प्रेरणा की है, जिसके लिये इन उभय आदरणीय विद्वानोंका मैं उपकृत हूं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीकृष्णप्रेमियोंके समीप श्रीगोपीगीत सुबोधिनीजीके हिन्दी भाषान्तर सहित यह प्रथम ही प्रकाशित हो रहा है इसको भक्तजन सादर पढ़कर भक्तिभावसे मनन करें। श्रीगोपीजनोंके हृदयगत भावोंको प्रकट करना तथा उनके यूथोंके सात्विकादि भेदसे विचार करना श्रीवल्लभाधीशका ही सामर्थ्य है। आचार्यश्रीने श्रीसुबोधिनीजी हमारे हितार्थ प्रकट की है। श्रीहरिरायजीने ठीक ही आज्ञा की है कि—

नाश्रितो वल्लभाधीशो न च दृष्टा सुबोधिनी।
नाराधि राधिकानाथो वृथा तज्जन्म भूतले॥

जिसने श्रीवल्लभाधीशका आश्रय नहीं किया, जिसने श्रीसुबोधिनीजीका दर्शन श्रवणादि नहीं किया तथा श्रीगोपीजनवल्लभ भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा न की उसका भूतलमें जन्म वृथा है। श्रीसुबोधिनीजी तथा उसपर लिखा हुआ संस्कृत साहित्य अति गूढ तथा विस्तृत है। उसका मनन करना उचित ही है।

अन्तमें एक बात स्पष्ट निवेदन करूंगा कि इस विभागका इस स्वरूपमें इसी समय जो प्रकाशन हुआ है, उसमें प्रधान कारण श्रीमद्वल्लभाचार्यवंशविभूषण गोस्वामिकुमार श्रीगोविन्दलाल-जी बावाश्री सूरतनिवासीका प्रोत्साहन एवं अनुकम्पा ही हैं। आपश्रीकी आज्ञासे कलकत्ताके आदरणीय, श्रीवल्लभाधीशके आश्रित वैष्णवोंने आर्थिक सहायता प्रदान की है। यदि सभी आचार्यवंशज तथा वैष्णव महानुभाव इसी प्रकार अनुग्रह करें तो यह सेवक अपने अन्तिमकालमें सम्प्रदायकी साहित्य सेवा कर कृतार्थ हो सकेगा। श्रीवल्लभाधीशके प्रियस्वरूप एवं प्रियनामके अधिकारियोंको यह गोपीगीत सादर समर्पित करता हूं।

काशी
भाद्र शुक्ल ८ वि० सं० २००६

श्रीदेवकीनन्दनाचार्यचरणकमलाश्रित माधव शर्मा—(जाम खंभालिया निवासीका)
सादर भगवत्स्मरण।

निवेदनः—

गोपीगीतके सुबोधिनीजीकी प्रथमावृत्ति प्रकाशित होते ही वैष्णव समाजने पधरालिया और बराबर मांग आ रही थी; किन्तु अर्थ संकोचके कारण द्वितीयावृत्तिका प्रकाशन न होसका। लखनऊ निवासी परम भगवदीय प्रो० राधेश्यामजीके आर्थिक प्रोत्साहनसे यह लाभ वैष्णव समाजको प्राप्त हो रहा है। इसी प्रकार विद्यानुरागी सुबोधिनीप्रेमी प्रोत्साहित करते रहेंगे तो हिन्दी भाषामें आगे भी ग्रन्थ प्रकाशित होंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रासलीलामृत

बजत कुञ्जमें मञ्जु बांसुरी, व्रजवधू बंधी प्रेम रासरी ।
घर तजो गयी कृष्ण पासरी, शरदचन्द कीनो उजासरी ॥
हरि कियो तबे मंद हासरी, निरखिके भयो ताप नासरी ।
सुमन कुञ्ज राजे बिकासरी, भ्रमर पुंज गुञ्जे सुवासरी ॥
गुनभरी तिया रूप रासरी, पुनप्रवीन हे प्रेम गांसरी ।
अतनु मोद भाव प्रकासरी, मिल गुपाल कीने विलासरी ॥
मदगुमान ही जान तासुरी, हृदयमें छिपे श्रीनिवासरी ।
विरह जात बाढ़ो हुतासरी, तरु लतान पूंछे उदासरी ॥
सघनकुञ्ज कीनी तलासरी, गुनकथा रची याही आसरी ।
भरतनैन ऊँचे उसासरी, करि कृपा मिले पीतवासरी ॥
वदन कंज है चारु हासरी, मदन मान जातें निरासरी ।
कर गहे जुरी आस पासरी, भरत अङ्क बाढ़ो हुलासरी ॥
अधर पान कीनेजू प्यासरी, मिटत नाहिं जैसे उपासरी ।
लिपटश्यामसूं ऐसी भासरी, घन सुदामिनी भासमासरी ॥
करत कृष्णके संग रासरी, सरस राग गावें हुलासरी ।
सुरजु सप्त नीके नीकासरी, मुरज बीन बाजे मिठासरी ॥
बजत मंजु मंजीर लासरी, नचत मोर छांड़े अवासरी ।
सुर-विमान छाये अकासरी, परत पुष्प वृष्टि तहाँसरी ॥
कटगई तबे गेह फांसरी, हर गयो जू संसार त्रासरी ।
चरन मांज दीजे निवासरी, सरन गोकुलाधीश दासरी ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीकृष्णाय नमः

श्रीमद्भागवतदशमस्कन्धतामसफलप्रकरणान्तर्गत रासपञ्चाध्यायायीस्थं

गोपीगीतम्

श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता श्रीसुबोधिनी व्याख्याका हिन्दीभाषान्तर

अध्याय २८

(कारिका) अष्टाविंशे हरेर्गानं स्वभावादपराधतः ।
कृतावज्ञा गोपिका हि स्तोत्रं चक्रुरितीर्यते ॥ १ ॥

स्वभावसे अथवा अपराधसे मानरूपी अवज्ञा जिन्होंने की है ऐसे गोपीजनोंने श्री हरिके स्तोत्र रूप गान किया है, इसलिये इस २८ वें अध्यायमें गोपीजनोंके किये हुए हरिके गानका वर्णन किया जाता है ।

(विरहावस्थाका स्वभाव ही ऐसा है कि उसमें प्रियतमके गुणोंका गान ही हो । इसलिये गोपीजनने स्वभावसे ही श्रीहरिके गुणोंका गान किया, किंवा हम अन्य भक्तोंसे अधिक हैं, श्रीगोपीजनने इस प्रकार अपने स्वरूपमें अधिकता मानी और इस प्रकार उन्होंने अपराध किया, और ऐसा अभिमान किया कि जब प्रभु हमारी प्रार्थना करेंगे तब ही हमारेमें रहे हुए रसका दान हम प्रभुको करेंगे, इस प्रकार गोपीजनोंने मानरूप अवज्ञा की और उससे प्रभु अप्रसन्न हुए। अप्रसन्न हुए प्रभु स्तोत्रसे प्रसन्न होंगे इस प्रकार विचार कर गोपीजनोंने गान किया । अथवा श्लोकका अन्वय अन्य प्रकारसे भी कर सकते हैं । इस प्रकारके स्वभावसे जो अभिमानरूपी अवज्ञा हुई जिससे प्रभु अप्रसन्न हुए । इस अप्रसन्न प्रभुको प्रसन्न करनेके लिये गुणगान यह एक ही उपाय योग्य है, इस प्रकार गोपीजनोंने निश्चय किया और स्तोत्ररूप गान किया, इसलिये इस २८वें अध्यायमें गोपीजनों द्वारा गाया हुआ भगवानका स्तोत्र गोपीगीत वर्णन किया जाता है। इस द्वितीय अर्थमें अभिमानरूप अपराधका भी कारण श्रीगोपीजनोंका स्वभाव है । गोपीजन शृङ्गार रसका आलम्बन विभाव है और आलम्बन-विभावका ऐसा स्वभाव है कि अभिमानरूप अवज्ञा भी सहज हो जाती है। इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकारके मानसे भी जब प्रभुरूपी रसिक नायक अप्रसन्न हो जाते हैं, तब रसमार्गकी रीतिसे नायिका नायकका गुणगान करती है। और उस प्रकार उसे प्रसन्न भी करती है। अतएव श्रीगोपीजनोंने अपने भावके अनुसार रस शास्त्रकी रीतिसे स्तोत्ररूप गान किया, और उससे सात्विकादि गुणोंका भी जो वर्णन आगे किया जाता है वह यह प्रदर्शित करता है कि गोपीजनोंका भाव अनेक प्रकारका है।)

एकोनविंशतिविधा गोप्यः स्वस्याधिकारतः।
एकोनविंशतिविधां स्तुतिं चक्रुर्हरेः प्रियाम्॥ २॥

अपने अधिकारके अनुसार १९ प्रकारके श्रीगोपीजनोंने श्रीहरिको प्रिय ऐसी १९ प्रकारकी स्तुति की। इसलिये इस अध्यायमें १९ श्लोक हैं।

(अन्यपूर्वा-श्रुतिरूपा गोपीजन निर्गुण और सात्विक आदि भेदसे दश प्रकारकी हैं और अनन्यपूर्वा कुमारिका-गोपीजन निर्गुण और सात्विकादि भेदसे ९ प्रकार की हैं इस प्रकार १९ प्रकारके गोपीजन हैं। कुमारिओंमें तामस तामसी गोपी अथवा उनका यूथ नहीं है इसलिये उनके ९ प्रकार हैं।)॥ २॥

राजसी तामसी चैव सात्त्विकी निर्गुणा तथा।
एवं चतुर्विधा गोप्यः पतिमत्यो निरूपिताः॥ ३॥

पतिमती—श्रुतिरूपा—अन्यपूर्वा गोपी प्रथम सात्विक क्रमसे गीतका प्रारम्भ करती हैं, इसलिये प्रथम श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ सात्विक राजस है। दूसरा श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ सात्विक तामस है, तीसरा श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ सात्विक, सात्विक है और चतुर्थ श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ गुणातीत-निर्गुण है। इस प्रकार चार प्रकारके श्रुतिरूपा गोपिकाओंका वर्णन किया गया है॥ ३॥

तथैवानन्यपूर्वाश्च प्रार्थनामाहुरुत्तमाम्।
गुणातीता सात्विकीश्च तामसी राजसीस्तथा॥ ४॥

प्रथम चार श्लोकके गानेवाली चार प्रकारकी श्रुतिरूपा गोपिकायें हैं, ऐसा वर्णन करके पुनः श्री शुकदेवजी उसी प्रकार अनन्यपूर्वा ऋषिरूपा कुमारिका गोपीजनोंकी उत्तम प्रार्थनाका वर्णन करते हैं। इसलिये अनन्यपूर्वा गोपियोंके गानमें भी प्रथम सात्विक क्रमसे गीतका आरंभ होता है। अर्थात् पंचमश्लोक गानेवाली गोपिका अथवा यूथ सात्विक, सात्विक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। षष्ठ श्लोक गानेवाली गोपीका अथवा उनका यूथ सात्विक तामस है। सप्तम श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ सात्विक राजस है। और अष्टम श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ गुणातीत है। इस प्रकार श्रुतिरूपा गोपीजनोंके चार प्रकारके समान ऋषिरूपा गोपीजनोंका भी चार प्रकारका वर्णन किया जाता है ॥ ४ ॥

कृष्णभावनया सिद्धा विशेषेणाह ताः शुकः ।
अनन्यपूर्विका एव पुनस्तिस्रो मुदा जगुः ॥ ५ ॥

सात्विक क्रम पूर्ण हुआ। अब द्वितीय राजस क्रमका आरम्भ अन्यपूर्वा गोपीजन करती हैं अथवा अनन्यपूर्वा गोपीजन करती हैं, इस प्रकार यदि शंका हो तो शुकदेवजी उसका समाधान करते हुए कहते हैं कि अनन्यपूर्वा गोपीजन कृष्णभावनाके कारण सिद्ध हैं। इसलिये राजसक्रममें प्रथम तीन श्लोक भी अनन्यपूर्वा गोपीजन ही विशेषरूपसे गाती हैं। अर्थात् ९ से ११ वें श्लोक तक गानेवाली अनन्यपूर्वा गोपीजन हैं। नवम श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ राजस सात्विक है। दशम श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ राजस तामस है और ग्यारहवां श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ राजस राजस है इस प्रकार राजस क्रमसे अनन्यपूर्वा गोपिकाओंने आनन्द सहित गान किया ॥ ५ ॥

सात्विकी तामसी चैव राजसी चेति विश्रुताः ।
सपूर्वाश्च ततस्तिस्रः तामसी राजसी परा ॥ ६ ॥

पंचमसे ग्यारहवें श्लोक पर्यन्त अनन्यपूर्वा गोपीजनोंने सात्विक और राजसक्रमसे छः श्लोकोंमें गान किया, अब अन्यपूर्वा श्रुतिरूपा गोपिकायें भी बाकी रहे हुए राजस और तामस इन दो क्रम से छः श्लोकोंमें गान किया है। अर्थात् १२ वें श्लोक पर्यन्तमें राजस क्रमसे अन्यपूर्वा गोपिका गान करती हैं। १८ वें से १७ वें श्लोक पर्यन्तमें तामसक्रमसे गान करती हैं। १२ वाँ श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ राजस तामस है। तेरहवाँ श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ राजस राजस है। और चौदहवाँ श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ राजस सात्विक है। इस प्रकार राजसीमें तामसी और परा—सात्विकी अन्यपूर्वा गोपिकायें गान करती हैं ॥ ६ ॥

पुनस्ता एव त्रिविधा अस्तीत्यादिभिस्त्रिभिः ।
राजसी तामसी चैव सात्विकीति विभेदतः ॥ ७ ॥

पन्द्रहवें श्लोक से सत्रहवें श्लोक पर्यन्त अन्यपूर्वा गोपीजन ही तामसक्रमसे गान करती हैं। उसमें पन्द्रहवें श्लोकका गान करनेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ तामस-सात्विक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। सोलहवें श्लोकका गान करनेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ तामस तामस है और सत्रहवें श्लोकका गान करनेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ तामस राजस है (यह व्यवस्था १५, १६, १७ इन तीन श्लोकोंके उपरकी श्रीसुबोधिनीजीके आधारसे की गयी है) कारिकामें 'तामसी राजसी चैव सात्विकीति विभेदतः' इस प्रकार कहा गया है। अर्थात् कारिकाके अनुसार पन्द्रहवें श्लोकको गानेवाली तामस राजस और सत्रहवें श्लोकको गानेवाली तामस सात्विक समझी जाय। इस प्रकार श्रीसुबोधिनीजी और कारिकाके अभिप्रायमें भेद मालूम होता है। इस भेदको दूर करनेके लिये लेखकार श्रीवल्लभजी लिखते हैं—कि 'राजसी तामसी चैव सात्विकीति विभेदतः' इस कारिकामें जो क्रम दिया गया है वह क्रम स्वीकार न करना। कारिकार्थके लेखक निर्भयरामजी भट्ट भी इस विषयमें कहते हैं कि कारिकामें दिया हुआ क्रम अविवक्षित है अथवा उसका तात्पर्य अन्य कुछ होना चाहिये। किंवा कारिकामें दिया हुआ क्रम सामान्य समझना और श्रीसुबोधिनीमें दिया हुआ क्रम विशेष समझना, जिससे सामान्य विशेष न्यायसे क्रमका विरोध दूर हो सकता है ॥७॥

अनन्यपूर्वा द्विविधा राजसी सात्विकी तथा।
तमसा तामसी तत्र नास्तीत्येकोनविंशतिः ॥ ८ ॥

सत्रहवें श्लोकमें अन्यपूर्वा गोपीजन उपसंहार करते हैं और उनका अब कोई भी क्रम अवशेष न रहनेसे अनन्यपूर्वा गोपीजन तामसक्रम अठारहवें श्लोकका आरम्भ करते हैं। अठारहवें श्लोकके गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ अनन्यपूर्वा तामस सात्विक हैं और उन्नीसवाँ श्लोक गानेवाली गोपिका अथवा उनका यूथ अनन्यपूर्वा तामस राजस हैं। अनन्यपूर्वामें तामस तामसी गोपिका अथवा उनका यूथ नही है। इसलिये अनन्यपूर्वाके तामस क्रममें गानेवाली गोपिकायें अथवा इनका यूथ केवल दोही हैं, तीन नहीं हैं। इस प्रकार उन्नीस श्लोकोंके गान करनेवाली उन्नीस प्रकारकी गोपिकायें अथवा उनका यूथ है ॥८॥

अथवा प्रार्थनाद्यायाः सप्तान्ते द्विविधा पुनः।
चतुर्थ्यस्तु समास्तत्र तत एकोनविंशतिः ॥ ९ ॥

(इस प्रकार अन्यपूर्वा गोपीजनके सब मिलाकर दश श्लोक हैं, उनमें ९ श्लोकोंके गानेवाली गोपीजन सगुण हैं और एक श्लोक (चतुर्थ श्लोकके) गान करनेवाली गोपीजन गुणातीत है। अनन्यपूर्वा गोपीजनके कुल ९ श्लोक हैं, उनमें आठ श्लोकके गानेवाली गोपीजन सगुण हैं और एक श्लोकके (आठवें श्लोकके) गानेवाली गोपीजन गुणातीत हैं। इस व्यवस्थाके अनुसार अन्यपूर्वा गोपीजनोंका एक श्लोक अधिक है और इस कारण यदि वैषम्य मालूम पड़े तो उसका परिहार करनेके लिये गूढार्थ सन्धिरूप द्वितीयपक्ष भी है। वह इस प्रकार है।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आरम्भकी प्रार्थनाके सात श्लोक (१-३, ५-८) और अन्तमें दिये हुए दो श्लोक (१३-१४) इस प्रकार नौ श्लोकोंकी गायन करनेवाली अनन्यपूर्वा कुमारिका गोपीजन हैं। अब चतुर्थ श्लोकके सिवाय अन्य नौ (९-१२, १५-१९) श्लोकोंके गान करनेवाली अन्यपूर्वा गोपीजन हैं। चतुर्थ श्लोकके गानेवाली अनन्यपूर्वा और अन्यपूर्वा गोपीजन हैं इस प्रकार सब मिलकर इस गोपीगीतमें १९ श्लोक हैं। इस व्यवस्थाके अनुसार नौ श्लोक सगुण अन्यपूर्वा गोपीजनके और नौ श्लोक सगुण अनन्यपूर्वा गोपीजनके हुए और एक श्लोक निर्गुण अन्यपूर्वा तथा अनन्यपूर्वा गोपीजनका है। इस रीतिसे अन्यपूर्वा और अनन्यपूर्वा गोपीजनके श्लोकोंकी संख्या समान होती है। इस प्रकार समझनेसे वैषम्य दोषका परिहार सरलतापूर्वक हो सकता है। इसलिये यह दूसरा पक्ष सब प्रकारसे निर्दोष और सम है ॥ ९ ॥

तत्तद्वाक्यानुसारेण तासां भावो निरूप्यते ।
अन्यथाऽनेकता स्तोत्रे प्रकारैर्नोपयुज्यते ॥ १० ॥

इस अध्यायके भिन्न भिन्न श्लोकोंमें गोपीजनोंने भगवानकी जो स्तुति की है उसमें गोपीजनोंके भावका ही वर्णन है। यदि इस प्रकार हम न समझें तो भगवानकी स्तुतिमें जो उपालम्भ आदि प्रकारसे अनेकता देखनेमें आती है वह निरुपयोगी हो जाय। क्योंकि केवल स्तुतिमें उपालम्भ आदि 'कुहक' 'कितव' इत्यादि शब्दोंका प्रयोग हो नहीं सकता। और जब गोपीगीतमें उपालम्भ आदि देखनेमें आता है तब ऐसा अनुमान होता है कि इन समस्त श्लोकोंमें गोपीजनोंके भावका ही वर्णन है। भक्तका जैसा भाव रहता है और जैसा अधिकार रहता है, तदनुसार वे भगवानकी स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

ये समस्त गोपीजन भगवानके गुणका जब गान करने लगे तब प्रथम कुछ राजसी गोपियाँ कहती हैं—(अब यहाँसे गोपीगीत प्रारम्भ होता है)

(मूलम्) **जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।**
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वाँ विचिन्वते॥ १ ॥

भावार्थ—आपके जन्मसे व्रजका वैकुण्ठसे भी अधिक उत्कर्ष हुआ है क्योंकि लक्ष्मीजी भी यहाँ पर ही सदैव आश्रय लेती हैं। हे प्रिय, आपके जन ! आपके लिये ही प्राणधारण करने वाले दिशाओंमें आपकी खोज करते हैं, यह देखें ॥ १ ॥

श्रीसुबोधिनी—इस श्लोकमें जो जय शब्द है उसका प्रयोजन मंगल है। गोपीजनोंका यह स्तोत्र समस्त विघ्नोंको दूर करनेके लिये प्रथम जय शब्द है। इस प्रकार जय शब्दका प्रयोजन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न रहता तो श्लोकके प्रारम्भमें ही 'जयति' इस क्रियापदका प्रयोग नहीं आता, किन्तु व्रजः इस कर्तृ वाचक पदका प्रयोग करके 'जयति' का प्रयोग करनेमें आता। आपके अवतारसे अर्थात् प्राकट्यसे सम्पूर्ण व्रज कृतार्थ हो गया, किन्तु केवल हम ही अकृतार्थ रहे। अतएव हम भी जिस प्रकार कृतार्थ हों उस प्रकार आपको यत्न करना होगा। इस प्रकार कहनेके लिये श्रीगोपीजन 'तेजन्मना व्रजः अधिकं जयति' इन शब्दोंमें कहती हैं कि आपके प्राकट्यसे व्रजका सर्वोत्कर्ष सिद्ध हो गया है। सबसे श्रेष्ठ होकर स्थिति करनेका नाम जय है। वैकुण्ठसे भी अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करना इसका नाम अधिकजय है। वैकुण्ठमें भी भगवान् इस प्रकारकी लीला नहीं करते। यद्यपि भगवान्‌का जन्म—अवतार-प्राकट्य मथुरा में हुआ है, तथापि उनके प्राकट्यसे मथुरा सबसे श्रेष्ठ नहीं हुई, किन्तु केवल व्रज ही सर्व श्रेष्ठ हुआ है।

शंका—भगवानका प्राकट्य यह सर्वश्रेष्ठताका कारण है ऐसा जगतमें प्रसिद्ध नहीं है; क्योंकि भगवानका प्राकट्य केवल व्रजमें होनेसे अनन्य असाधारण है और उसीसे एकही है। (इस प्रकार भगवत् प्राकट्यसे सर्वश्रेष्ठता सिद्धि करनेमें असाधारण, अनेकान्तिक नामका हेत्वाभास रहा है। जिस प्रकार 'शब्द नित्य है शब्दत्वके कारण' इस अनुमानमें असाधारण अनैकान्तिक नामका हेत्वाभास रहा हुआ है। क्योंकि शब्दत्व केवल शब्दमें ही रहता है। इसी प्रकार व्रज सर्वश्रेष्ठ है भगवत् प्राकट्यके कारण। इस अनुमानमें भी असाधारण अनेकान्तिक नामका हेत्वाभास रहा हुआ है। भगवत् प्राकट्य केवल व्रजमें ही है दूसरे स्थानमें नहीं। अर्थात् भगवत् प्राकट्यके आधारसे व्रजकी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने वाला अनुमान आभास दुष्ट-मिथ्या है।) अतएव व्रजकी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करनेवाला कोई ऐसा कारण बतलाइये कि जो लोकमें प्रसिद्ध हो।

समाधान—उपरोक्त कथनानुसार शंका हो तो उसके समाधानमें शुकदेवजी गोपिकाओंके शब्दोंमें कहते हैं कि 'श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि' यहाँ पर अर्थात् व्रजमें लक्ष्मीजी सदैव हीनभावसे आश्रय करती हैं। मैं "हीन" हूँ, इस प्रकार हीनभावसे लक्ष्मीजी व्रजका आश्रय करती हैं। वैकुण्ठमें लक्ष्मीजी भगवानकी नियत अथात् निश्चितपत्नी हैं अर्थात् वहाँ उनको किसी हीन-भावसे सर्वदा आश्रय करना नहीं पड़ता, किन्तु यहाँ पर लक्ष्मीजीके समान हम गोपीजन अनेक हैं, इसलिये लक्ष्मीजीको स्वस्थता नहीं रहती। और इसलिये 'मेरेको कब अवसर प्राप्त होगा' इस विचारसे वह व्रजका सदैव सेवन करती हैं। अतः जो लोग लक्ष्मीजीकी स्थितिके कारण सर्वश्रेष्ठता मानते हैं वे लक्ष्मीजी भी गोकुलका आश्रय करके यहाँपर रही हैं। यह अर्थ यथार्थ है, यह प्रदर्शित करनेके लिये मूल श्लोकमें 'हि' पद रखा गया है। लक्ष्मीजी पतिव्रता हैं और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भक्तोंके ऊपर कृपा प्रसिद्ध करनेके लिये लक्ष्मीजीके पति जहाँ पर भक्तोंके अधीन होकर स्थिति करते हैं वहाँ पर भगवानकी पत्नी लक्ष्मी भलीभांतिसे स्थिति करें इसमें आश्चर्य क्या है ? भगवान् व्रज में भक्तोंके अधीन होकर स्थिति करते हैं और भक्तोंके उपर कृपा प्रदर्शित करते हैं यह वार्ता प्रथम उलूखन प्रकरणमें कही गयी है ।

हे भगवन् ! आपके प्राकट्यके कारण व्रजकी सर्वश्रेष्ठता है इस बातको सब लोक जानते हैं । इसलिये आप हमारे साथ रमण करेंगे, इससे आपके लिये किसी प्रकारसे न्यूनता न होगी । इसी प्रकार लक्ष्मीजीके मनमें भी खेद नहीं होगा; क्योंकि आपने अपने प्राकट्यसे सर्वश्रेष्ठ व्रजका निजत्वभावसे अर्थात् यह व्रज मेरा है इस प्रकार स्वयं अङ्गीकार किया है । अतएव हमारे लिये पधारे हुए आपको इस श्रीमद्गोकुलका एकबार दर्शन करना चाहिये ।

अथवा इस श्लोकका अन्वय अन्य प्रकारसे भी हो सकता है । 'तावकास्त्वयि धृतासवो दिक्षु त्वां विचिन्वते' यह आगेके वाक्यका अर्थ ही दृश्यतां क्रियापदका कर्म है । और इस अन्वयके अनुसार ऐसा अर्थ होता है कि 'आपके विषयमें जिन्होंने प्राण धारण किया है, ऐसे आपके भक्त गोपीजन आपको दिशाओमें खोज रही हैं यह आप देखें ।' इस प्रकारका अर्थ व्रजमें आप प्रकट होकर तिरोहित हो गये और भक्त सब दिशाओंमें आपकी खोज करे यह विषय अनुचित है, इस प्रकार अनुचितत्त्व प्रदर्शित कर गोपीजन निवेदन करती हैं कि आप व्रजमें प्रकट हुए हैं ऐसा निश्चय करके ब्रह्मादि लोग यहाँ पर व्रजमें आते हैं और जब व्रजमें रहनेवाले हमारे समान गोपियाँ सब दिशाओंमें आपको खोज रही हैं यह अत्यन्त अयोग्य वार्ता है । व्रजमें रहनेवाले लोगोंमें भक्ति ही नहीं है, अन्यथा वे भगवानके विरहसे मृत्युको प्राप्त होते । किन्तु व्रजके लोग (गोपीजन) मृत्यु प्राप्त नहीं हुई, इसलिये वे भगवानके भक्त नहीं हैं । अतः ऐसे अभक्त भगवानको न देखें यह बात उचित है । यदि इस प्रकारकी शंका की जाय तो गोपीजन उसका परिहार करते हुए कहती हैं कि 'त्वयि धृतासवः' आपके लिये ही धारण किये हैं प्राण जिन्होंने ऐसे हम गोपीजन हैं । हमारे प्राणका आपको कुछभी उपयोग नहीं है ऐसा जिस क्षणमें हम लोग समझेंगी उसी क्षण में हम अपने निरुपयोगी प्राणका त्याग करेंगी । गोपीजनके कथनका यह भाव है । अब तो अल्प विलम्ब होने पर हमारे शरीरमेंसे प्राण निकल जाँयेगे । इसीलिये प्राणको आश्वासन देनेके लिये ही हम गोपीजन आपका अन्वेषण करती हैं । अन्यथा प्रातःकाल आप पुनः व्रजमें अवश्य पधारेंगे ही और इस समय रात्रिमें हम जो आपकी खोज कर रही हैं वह व्यर्थ ही है, ऐसा मानकर व्रजमें ही चली गयी होतीं; किन्तु व्रजमें न जाकर यहाँ आपकी खोज कर रही हैं इससे स्पष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होता है कि हमने आपके लिये ही प्राण धारण किये हैं। आप व्रजमें विराजमान हो तथापि आपके भक्त आपको दिशाओंमें अन्वेषण करते हैं, यह अत्यन्त अनुचित है। इसलिये एक वार आप अपने निज भक्तोंको देखें ऐसी हमारी प्रार्थना है।

इस प्रकार एक यूथके गोपीजनोंने भगवानके दर्शनकी प्रार्थना की। गोपीजन भगवान-को दयितप्रिय इस प्रकार सम्बोधन करती हैं। इसलिये पतिका दर्शन न होने पर स्त्रियोंका जीवन उचित नहीं है, ऐसा निरूपण किया गया। यद्यपि भगवान् गोपीजनको देखें उससे गोपीजनका कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता, तथापि गोपीजनकी दीनताको देखकर उन्हें भगवान् अपने स्वरूपका भी यथार्थ दर्शन करावेगें। इस रीतिसे भगवत् दर्शनके लिये ही श्रीगोपीजनोंने यहाँ पर हमें देखें इस प्रकार भगवानसे प्रार्थना की है ॥ १ ॥

इस प्रकार प्रथम श्लोकमें गोपीजनका दैन्य और अयोग्यताका जो वर्णन किया गया है उससे विदित होता है कि ये गोपीजन सात्विक राजस हैं। सात्विक तामसी गोपीजन 'हमारा वध न करें' ऐसी प्रार्थना करनेके लिये 'शरदुदाशये' इस श्लोकमें कहती हैं कि भगवानके दर्शन न होनेसे वध होता है।

शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ ते शुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥

भावार्थ—हे सुरतनाथ! शरद ऋतुके सरोवरमें सुन्दर रीतिसे उत्पन्न होनेवाले कमलके भीतर रही हुई लक्ष्मीको हरण करनेवाली दृष्टिसे आप हम शुल्करूपी दासियोंका अथवा धर्म दासियोंका वध करते हैं वह हे वरद! वरदान देनेवाले! क्या घात न कहा जाय? ॥ २ ॥

श्रीसुबोधिनीजी—शरत् कालका जो उदाशय है अर्थात् सरोवर है। उसमें सुन्दर रीतिसे उत्पन्न हुआ जो कमल उसके भीतर रही हुई जो श्री अर्थात् शोभा उसका भी हरण करनेवाली-अर्थात् उस सुन्दर दृष्टिसे हे वरदान देनेवाले भगवन्! आप जो हमारा वध कर रहे हैं। उस वधका आपको क्या फल नहीं प्राप्त होगा? अर्थात् आपको हमारे वध करनेका फल मिलेगा ही। जो किसी भी साधनसे दूसरेके प्राण निकल जाय उस साधनका साधक घातक पुरुष दोषका पात्र होता है (भगवानकी दृष्टि गोपिजनोंके वध करनेका साधन है इसलिये ऐसे साधन-वाले भगवान् वधदोषके पात्र हैं।) इस प्रकार दृष्टिसे वध करते हो ऐसा कहनेसे भगवानकी दृष्टि सबका घात करनेवाली है। ऐसा वर्णन किया गया, और इसके प्रमाणरूप श्रीमद्भागवतमें भी कहा है। 'आयुर्मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत' भगवान् केवल अपनी दृष्टि से ही आयुष्य, मन और ओजसका हरण करनेवाले हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(यद्यपि भगवानकी दृष्टि आनन्दमयी है और वह परमानन्दका दान करती है और किसीका घात नहीं करती तथापि विरहावस्थामें स्मरण करने पर वह दृष्टि अत्यन्त क्लेश प्रदान करती है, इससे भगवानकी इस आनन्दमयी दृष्टिमें गोपीजनोंको घातकताका भान होता है अर्थात् भगवानकी कालादि रूपमें जो सर्वघातक दृष्टि है, उसका निरूपण इस आनन्दमयी दृष्टिमें श्री गोपीजनोंने किया है।,)

इस प्रकार आप हमारे ऊपर भी सामान्यरीतिसे क्रूर दृष्टिपूर्वक देखते हैं। अन्यथा हमारे प्राणको भला किस प्रकार बाधा हो ? आपका स्वरूपतो आनन्दमय है (आनन्दमय रूपसे आप हमें तो देखते ही हो; किन्तु अपना आनन्दमय स्वरूप हमें नहीं दिखाते। आनन्दमयरूपकी दृष्टि भी आनन्दमयी होती है।) इसलिये वह आनन्दमय स्वरूप आनन्दमयी दृष्टिसे ही जीवन दान दे, किन्तु वैसा नहीं हो रहा है। इस आनन्दमय आप अपनी आनन्दमयी दृष्टिसे हमारा केवल वध ही कराते हैं। (इसलिये वास्तविक रीतिसे आपका आनन्दमय स्वरूप अपनी आनन्द मयी दृष्टि द्वारा हमारा वध करनेके दोषका कारण हो रही है।)

पुनः हमारा वध करना यह योग्य नहीं है; क्योंकि हम दासिकायें अर्थात् अधम दासियाँ हैं। वस्तुतः स्त्रियोंका और उसमें भी प्रयोजनके बिना कोई वध नहीं करता। फिर हम शुल्क अर्थात् मोलदेकर ली हुई दासिकायें हैं और आप सुरतनाथ हैं। (सुरतनाथ शुल्क दासिकाओंका वध करे यह सर्वथा अनुचित है) हे भगवन्! आप सर्व पुरुषार्थ सिद्ध करनेवाले हैं। इसलिये मनुष्योंके अधिकारानुसार आपके नाम—सम्बोधन निश्चित हुए हैं। जैसे कि धर्ममार्गमें हे धर्मपालक, हे ब्रह्मण्य, हे यज्ञेश्वर, इत्यादि सम्बोधनोंसे धर्मार्थी पुरुष भगवानका सम्बोधन करते हैं। जिसप्रकार अर्थमार्गमें हे लक्ष्मीपते,! हे सर्वसिद्धिदाता! इत्यादि सम्बोधनोंसे अर्थार्थी पुरुष भगवानको सम्बोधन करते हैं, उसी प्रकार मोक्षमार्गमें हे मुकुन्द! हे योगेश्वर,! हे ज्ञाननिधे! इत्यादि सम्बोधनोंमेंसे मोक्षार्थी पुरुष भगवानको सम्बोधन करते हैं। ठीक उसी प्रकार तृतीय पुरुषार्थ कामकी अभिलाषावाली हम गोपियां भी आपको सुरतनाथ, इस प्रकारका सम्बोधन करती हैं। सुरत अर्थात् सम्भोग। जगतमें जितना सम्भोग अर्थात् भक्तोंमें जितना सम्यक् भोग है, उन समस्तके आप ही नाथ हैं। जगतमें आपकी आज्ञाके बिना सुरत प्रवृत्त नहीं हो सकता। अत एव आप ही सुरतके नाथ हैं।

(रत अर्थात् लौकिक भोग वह तो सृष्टिके आरम्भ कालसे प्रवृत्त हुआ है। इसलिये उसके निमित्त भगवानकी आज्ञाकी अपेक्षा नहीं रहती, क्योंकि सृष्टिके समान लौकिक भोग भी साथमें चला ही करता है, इस प्रकार वस्तुस्थिति होनेसे अर्थात् उत्तम प्रकारका अलौकिक शोभन रूप जो रत अर्थात् रमण वह सुरत है और उसको सम्यक् भोग अर्थात् संभोग भी कहते हैं। यह सुरत आपकी आज्ञासे ही—इच्छासे ही हमारेमें प्रवर्तित हुआ है। लौकिक जगत् प्रवाहित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो रहा है ! वह तो नष्ट ही रहता है । वह कहीं स्थिर नहीं रहता । इसलिये अति अलौकिक स्वरूपानन्दरूप सुरत इस लौकिक जगतमें होने योग्य नहीं है । इस प्रकारके अलौकिक रमणके तो आप ही नाथ अर्थात् प्रवर्तक तथा संरक्षक हैं । ऐसा होनेके कारण यदि वह सुख अर्थात् अलौकिक रमण आपके ही स्वरूपमें स्थित रहे तो आपके अलौकिक भक्त भी शून्य हृदय हो जायँ । आपकी ऐसी इच्छा जानकर ब्रह्माजीने आपकी प्रार्थना की । और उस प्रकारसे हमें प्रगट किये कि जिससे रसकी प्रवृत्तिमें जो प्रतिबन्ध हो वह दूर हो जाय । इसीसे गोपियोंने चतुर्थ श्लोक में कहा है कि 'विखनसार्थित'; ब्रह्माने जिसकी प्रार्थना की है ऐसे भगवान् हैं । काम भी भगवदीय है । मन पूर्वरूप है और वाणी उत्तररूप है । इसलिये भगवानने प्रथम मन उत्पन्न किया और तत्पश्चात् अपनी क्रियाओंमें अर्थात् भक्तोंमें अलौकिक भाव प्रवृत्त हो ऐसी वाणी उत्पन्न की, इसी हेतुसे श्रीसुबोधिनीजीमें आज्ञा पद रखा गया है । 'मैवं विभोऽर्हति भवान्' इत्यादि श्रीगोपीजनके वचन भी भगवद्भावात्मक होनेके कारण आज्ञारूप ही है ऐसा समझना । उन समस्त वचनोंसे ही रसप्रवृत्तिमें जो जो प्रतिबन्ध है, उन सबकी निवृत्ति भी हो गयी । अतः सुरतके नाथ आप ही हैं, ऐसा ब्रह्माने अथवा कामने निश्चय किया है ।)

ब्रह्माजीने अथवा कामने भगवानमें रहे हुए रमण करनेकी इच्छा रूपी भावसे जगतमें अर्थात् भगवदियोंमें सुरतकी प्रवृत्तिके लिये हमें शुल्करूप दासिकाओंके रूपमें ब्रह्माजीने प्रकट किया है । अथवा कामने आपको समर्पण की है । शुल्क अर्थात् मार्गमें निर्वाह करनेवाला द्रव्य जो प्रतिबन्धको दूर करता है । सुरत यदि भगवानमें ही निरुद्ध रहे तो लोकमें रस न रहे । इसलिये वह रस आपमेंसे हमारे द्वारा लोकमें प्रचलित हो, इस हेतुसे हम यहाँ पर व्रजमें आयी हैं ।

(यहाँ पर यह तात्पर्य है कि—ब्रह्मादि देव कामको अर्थात्, भगवद्भावको साक्षात् प्राप्त न कर सके अर्थात् भगवद्भाव प्रदर्शित करनेवाले लक्ष्मीजीके कटाक्ष जो सदैव प्रिय भगवानके साथ सम्बन्धमें आनेसे भगवद्भावात्मक ही हो गये हैं, उनके साथ सम्बन्ध होनेसे उनके अनुभावके कारण कदाचित् वह भगवद्भाव भी उत्पन्न हो, इस हेतुसे भागवद्भावकी कामना वाले ब्रह्मादि देव तपश्चर्या करते हैं । यहां पर चालू प्रकरणमें तो प्रभु स्वयं प्रकट हुए हैं, इसलिये रसमार्ग प्रकट करनेके निमित्त हमें द्वार रूपसे ब्रह्माने प्रकट किया है । इस श्लोकमें जो सुरत शब्द है उसका विग्रह-समास ऐसा होता है कि सुष्ठु अच्छी तरह से भगवानके साथ 'रत' रमण है जिनसे और उसका अर्थ भगवद्भाव ही है । लौकिक संभोग नहीं । यदि सुरतका अर्थ प्राकृत संभोग किया जाय तो ऐसा प्राकृत संभोग जगतमें पामरसे पामर मनुष्य पर्यन्तमें व्याप्त है । इसलिये श्रीसुबोधनीजीमें 'त्वदाज्ञा' अर्थात् आपकी आज्ञा के बिना जगतमें सुरत प्रवृत्ति नहीं होती, इत्यादि शब्दोंमें जो नाथ शब्दका विवरण किया गया है वह घट नहीं सकता । यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मार्ग प्रकट होनेसे ब्रह्माको कोई भी भाव सिद्ध नहीं होता। इसलिये श्रीमहाप्रभुजी इस पक्ष-को न स्वीकारकरके दूसरा पक्ष देते हैं कि कामने अर्थात् भगवदीय भावने गोपिकाओंको भगवानके लिये समर्पण किया। स्वामिनीजीके दर्शन होनेसे भगवानका भाव उछलता है और कामका कार्य करता है इसलिये उस कामने ही स्वार्थ निमित्त हमें प्रकट किया है)।

वह कार्य तो दूर ही रहा उससे विपरीत आप अपनी दृष्टिसे हमारा वध करते हैं। किन्तु इस प्रकार होने पर सम्पूर्ण कामशास्त्र व्यर्थ हो जायगा (भगवानकी लीलाका प्रतिपादन करनेसे ही कामशास्त्र सफल होता है। यदि कामशास्त्र भगवानकी लीलाका वर्णन न करे और लौकिक कामका ही वर्णन करे तो वह शास्त्र ही व्यर्थ हो जाय। कामशास्त्र भी यदि लौकिक कामका वर्णन करे तो वह लौकिक काम मनुष्योंका अधःपतन ही करे; किन्तु कोई पुरुषार्थ सिद्ध न कर सके। अर्थात् तीन ही पुरुषार्थ धर्म अर्थ और मोक्ष रहेंगे इसलिये काम रूपी अर्थात् अलौकिक भगवद् लीला रूप तृतीय पुरुषार्थ भी न रहे इसलिये अर्वथा जिस अलौकिक कामके लिये हम भूतलपर भेजी गयी हैं, वह सुख आपको सर्वथा सिद्ध करना उचित है)।

अथवा वह सुरत आप जब इच्छा करें तब सिद्ध करें, किन्तु अभी ही अपने स्वरूपको हमारे सामने प्रकट करके आप हमें जीवित रखें। आपकी दृष्टि हमारा वध करती है। ऐसे गोपीजन 'श्रीमुषा' इस शब्दमें कहती हैं। जो चोर रहता है वह घातक भी रहता है। ज्यों ज्यों चोरी करनेके व्यवसायमें निपुणता आती है, त्यों त्यों उस चोरकी घातकता भी वृद्धिंगत होती है गोपीजन यह अर्थ 'उदरश्रीमुषा' इन शब्दोंमें कहती हैं। उसमें भी दुर्गमें अर्थात् किलेमें जिनका जन्म हुआ रहता है वे बड़े निपुण होते हैं। उनमें भी जो जलदुर्गमें (पानीके किलेमें) जनमते हैं वे बहुत होशियार रहते हैं और इस प्रकारका पदार्थ सरसिज अर्थात् कमल है उनमें भी वे किलेके अन्दर ही रहते हैं अर्थात् जलदुर्गमें ही स्थिति करते हैं। (श्री अर्थात् शोभा, ऐसे स्थलमें रही हुई है कि उसका हरण करना अशक्य है। इस प्रकार चौर्य—हरणस्थलकी दृष्टि-से अशक्य है ऐसा वर्णन किया गया। उसमें भी जो साधुजात अर्थात् उत्तमकुलमें जन्मे हुए प्रभु समर्थ रहते हैं वे तो अतिनिपुण होते हैं उसमें भी ठंडी इत्यादि उपद्रव रहित प्रकाश वाला समय शरदऋतु है। इस प्रकार स्थल, समय और स्वरूपादिकी दृष्टिसे जिनकी चोरी करना अशक्य है, ऐसे पुरुष-कमलके समीपसे भी उनके उदरमें रहा हुआ सर्वस्व हरण करने वाला चोर अर्थात् भगवानकी दृष्टि साधारण गोपिकादिके अन्दर रहे हुए प्राणका हरण करके ले जायँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

जिस प्रकार किलेमें रही हुई वस्तुकी चोरी हो नहीं सकती, उस प्रकार जल दुर्गमें स्थिति करनेवाले कमलकी चोरी नहीं हो सकती। तदनुसार स्थलकी दृष्टिसे कमल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की चोरी नहीं हो सकती। पुनः कमल साधु जात है, प्रभु है, इसलिये उसका स्वरूप ही इस प्रकार का है। उसकी अर्थात् प्रभुकी, स्वामीकी, शक्तिमान् पुरुषकी कोई चोरी नहीं कर सकता। इस रीतिसे स्वरूपकी दृष्टिसे भी कमल की चोरी नहीं हो सकती, फिर समय भी शरदऋतु का है। इसलिये प्रकाश अधिक उत्तम है और प्रकाशके अन्दर चोरी नहीं की जा सकती। इसलिये समयकी दृष्टिसे भी कमलकी चोरी होना शक्य नहीं है। इस प्रकार देश, स्वरूप और काल इन तीन प्रकारसे भी जिनकी चोरी की नहीं जा सकती, ऐसे पदार्थ कमलके समीप से जब चोर अर्थात् भगवानकी दृष्टि उदरमें रही हुई सर्व वस्तु का हरण कर सकती, है तब गोपीजनोंके भीतर रहे हुए प्राणका हरण करे उसमें क्या आश्चर्य है!

जो लोग सबसे अधिक बलवान् रहते हैं वे अपकीर्ति न प्राप्त होनेके निमित्त चोरी करते हैं। (जो बलवान् राजा रहते हैं वे अपने लिये आवश्यक वस्तु यदि पैसा लेकरके भी न प्राप्त हो तो वह राजा बलात्कार करके उन वस्तुओंको लूट नहीं लेते, क्योंकि ऐसा करने में उनको अपकीर्ति होती है इसलिये अपनी प्रिय वस्तुकी वे चोरी करते हैं। यहाँ अपकीर्तिका अभाव न होगा अर्थात् अपकीर्ति होगी ही। अथवा यहाँ पर एक दूसरा अर्थ भी संभव है। यहाँ पर गोपिकाओंके कथनका भाव यह है कि आपकी केवल अपकीर्ति ही होगी किन्तु वध करनेका दोष भी प्राप्त होगा ही। श्री गोपीजन 'किं वधो न' इन शब्दों से यही बात स्पष्ट करती हैं।

अथवा श्लोकमें अदृशा इस प्रकार पद पृथक् करके अर्थ करना। अदृशा अर्थात् अदर्शन—दर्शन दिये बिना आप हमें मार रहे हैं, क्या यह वध नहीं है (अर्थात् आपका दर्शन ही हमें जीवन दान दे रहा है और इससे आपका अदर्शन ही हमारे वधका कारण है।) हम जो आपके पास आयी रहीं वह सुरत-रमणके लिये, और वह सुरत तो दूर रहा सामने-बीचमें मरण आ पहुँचा! इस प्रकार होनेसे सुरत अप्रकटित रहा और उसी से आपका 'सुरतनाथ' यह नाम प्रकट हुआ। अश्वको उत्पन्न करनेकी योगीमें शक्ति रहती है तथापि वह वस्तुतः अश्वपति नहीं कहा जाता, किन्तु जब वह योगी अश्वको उत्पन्न करे तभी वह अश्वपति कहा जाता है। (किसीमें शक्ति हो, किन्तु जहाँ पर्यन्त वह मनुष्य शक्तिका उपयोग करके कार्य न करे, वहाँ पर्यन्त उस मनुष्यकी शक्ति अन्य लोग स्वीकार नहीं करते। इस न्यायसे भगवान् सुरत प्रकट न करें तो सुरतनाथ कहे नहीं जा सकते।) फिर आपके दर्शन न होनेसे हमारा वध होगा इससें आश्चर्य क्या है? यदि आपके दर्शन न होंगे तो लक्ष्मी भी न रहेगी यह बात गोपीजन 'श्रीमुषा' इन शब्दोंसे कहती हैं। कमलके उदरमें रही हुई श्रीको यदि बाहर निकाली जाय तो उसी क्षणमें वह 'श्री' सम्पूर्ण पुष्ट अर्थात् विकसित न होनेके कारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपरिपक्व गर्भके समान नष्ट हो जाती है। यद्यपि लक्ष्मीको जीवित करनेवाली काल, द्रव्य, देशादि अनेक वस्तुयें हैं, तथापि जब उन्हें आपके दर्शन नहीं होते हैं तब वह जीवित नहीं रहती। हमारी भी ऐसी ही स्थिति है। (अर्थात् जब साधन सामग्रीवाली लक्ष्मीजी आपके दर्शन न होनेसे मरणको प्राप्त होती हैं तब हमारे समान निःसाधन गोपियां आपके दर्शन न होनेसे मृत्युको प्राप्त हों इसमें क्या आश्चर्य है ?) पुनः आप सबको वरदान देते हैं और हमें तो आप मार रहे हैं। यह एक महान् आश्चर्य है। वरदान देनेवाले वस्तुतः प्रत्यक्ष होते हैं। वे कभी छिपे नहीं रहते।

अथवा मूल श्लोकमें 'अशुल्कदासिकाः' इस प्रकार पदच्छेद करना। हम अशुल्क दासिकायें हैं। इसलिये आपको हमारा वध करना उचित नहीं। इस प्रकार अनेक प्रकारकी क्रूरताकी भावनाके द्वारा कुछ गोपीजन भगवानको उलहना देती हैं।

अन्तःस्थित रस पुष्ट हुआ हो और यदि वह बाहर न आवे तो वह रस पूर्ण नहीं होता। अतएव ऊपर कथित प्रकारसे इस श्लोकमें अन्यपूर्वा सात्त्विक तामसी गोपीकी वाणी बाहर प्रकट हुई है। अर्थात् गान रूपसे वाणी यदि बाहर प्रकट न हो तो भीतर रहा हुआ रस पूर्ण नहीं होता इसलिये गान रूपसे यह गोपीजनकी वाणी बाहर प्रकट हुई है।) ॥ २ ॥

आपने अनेक प्रकारसे हमारी रक्षा की है। इस कारण अभी भी हमारी आप रक्षा करें। इस प्रकार 'विषजलाप्ययात्' इस श्लोकमें कुछ कोमल अन्यपूर्वा सात्विक गोपीजन कहती हैं।

विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसात् वर्षमारुताद्वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे ऋषभ ! कालियानागके विषवाला जलपान करनेसे होनेवाली मृत्युसे, कालियादि साँपोंसे, तृणावर्तादि राक्षसोंसे, इन्द्रकृत वृष्टि एवं वायुसे, विद्युत् तथा अग्निसे, व्योमासुर एवं सब प्रकारके भयसे आपने हमारी अनेक बार रक्षा की है। अतएव अभी भी आप हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

श्रीसुबोधिनीजी—विषजल अर्थात् कालीयनागके विषवाला श्रीयमुनाजीका जल जिसका पान करके सब बालक और जो गौ मृत्युको प्राप्तहुए थे उनको भी आपने जीवित किया। व्याल अर्थात् कालीय सुदर्शन इत्यादि सर्प, तृणावर्तादि राक्षस, कालका और राक्षसका एकवद्भाव होनेसे एक वचनका प्रयोग है। उनसे भी आपने रक्षा की है। इन्द्र द्वारा की हुई वृष्टि और वायु इत्यादिसे भी आपने रक्षा की है। विद्युत् और अनल अर्थात् दावाग्निसे भी आपने रक्षा की है। यहां पर भी विद्युत्का और अनलका एकवद्भाव होनेसे एक वचनका प्रयोग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। वृष जो मयका पुत्र अर्थात् व्योमासुर उससे भी आपने रक्षा की है। गोपीजनोंको भूतकाल और भविष्यकालके पदार्थों का ज्ञान सम्यक् है, क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं अधिक क्या कहें ? सब प्रकारके भयसे आप हमारी रक्षा करें। रक्षण करनेका कारण प्रदर्शित करती हुई गोपीजन कहती हैं कि हे ऋषभ! अर्थात् भर्ता रक्षा करते ही हैं। इसलिये आप सदैव रक्षण करनेवाले हैं, इसलिये अभी भी आप हमारी रक्षा करें, ऐसा अर्थ है। काली नागका विष, सर्प राक्षस आदि हमको मारने वाले पदार्थ बाहरके थे, किन्तु अभी तो हमें मारनेवाला पदार्थ भीतरी है। इसलिये आपको हमारा पालन रक्षण करना सर्वथा उचित है। (ऋषभ यह अन्दर और बाहरसे रक्षण करनेवाला है। इसलिये आपमें रक्षण करनेका सामर्थ्य होनेके कारण और हमें मारनेवाला भीतरका पदार्थ सबसे बलवान् होनेके कारण आप हमारा सर्वथा रक्षण करें ॥ ३ ॥

अन्य कई एक श्रुतिरूपा निर्गुण गोपीजन भगवानका महान् अनुभाव अर्थात् प्रभाव जानकर आपके स्वरूपका वर्णन करती हैं और इसलिये भगवान् जिस प्रकार ज्ञानीको मोक्ष देते हैं, उसी प्रकार हमें भी हमारे योग्य मोक्ष दान करेंगे, इस हेतुसे 'न खलु' इस श्लोकमें वे भगवानकी स्तुति करती हैं।

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान्सात्वतां कुले ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सखे! आप वास्तविकमें यशोदाजीके पुत्र नहीं हैं, किन्तु आप सर्वदेहियोंके अन्तःकरणके द्रष्टा हैं। ब्रह्माकी प्रार्थनासे विश्वकी रक्षाके लिये आप यादवकुलमें प्रकट हुए हैं ॥ ४ ॥

श्रीसुबोधिनीजी—भगवान् यदि नन्दजीके पुत्र होकर यशोदाजीके पुत्र होंतब तो प्रथम गोपीजनोंके दिये हुए उलहना योग्य हो सकते हैं, भगवान् नन्दके पुत्र होकर यशोदाके पुत्र ही नहीं हैं; इसलिये उनको गोपीजनोंने जो कुछ कहा है वह अयोग्य है। (जिसप्रकार मथुरामें वसुदेवसे देवकीजीमें आगमन करके भगवानका प्रादुर्भाव हुआ है उस प्रकार यहां पर नन्दजीमेंसे यशोदाजीमें प्रवेश करके प्रादुर्भाव नहीं हुआ है, किन्तु यशोदाजीके गर्भमें तो माया ही रही थी, और भगवान् वहां पर्यन्त भक्तोंके हृदयमें विराजमान थे। इसलिये प्राकट्य-समयमें मायाके आवरण सहित भगवान् प्रकट हुए। इसलिये लीलाके निमित्त भगवानने नन्दजी और यशोदाजी उन दोनोंमें पुत्ररूपसे बुद्धि स्थापित की। इसलिये पृथक् पृथक् रीतिसे भगवान् नन्दके पुत्र हैं और यशोदाजीके भी पुत्र हैं; किन्तु भगवान् नन्दजीमेंसे यशोदाजीमें आये हुए न होनेके कारण एक ही समय वे नन्दरायजीके और यशोदाजीके पुत्र नहीं हो सकते। लोकमें भी पिता और माता इन दोनोंका सम्बन्ध पुत्रमें रहता है। इसलिये लोकदृष्टिसे विचार करनेपर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भगवानमें 'नन्दसूनत्वविशिष्टयशोदासूनुत्वं' अर्थात् नन्दजीके पुत्र होकर यशोदाजीके पुत्र होना ऐसा नहीं है। इसी अर्थमें भगवानके प्रति गोपीजन कहती हैं कि आप गोपिका-नन्दन अर्थात् यशोदानन्दन नहीं हैं अथवा गोपीजन शृङ्गार रस भाववाले होनेसे कटाक्षमें कहती हैं कि आप यशोदानन्दन नहीं हैं।) 'खलु' यह पद निश्चयके अर्थमें प्रयुक्त है। यहां पर कुछ भी तिरोहित—गुप्त जैसा नहीं है। गोपिकाके अर्थात् यशोदाजीके आप नन्दन-पुत्र हैं यह भी नहीं है। यदि लोकरीतिसे वैसा होता तो आप यशोदाजीके पुत्र हो सकते थे और जिस प्रकार यशोदाजीने आपको स्वाधीन कर लिया अथवा यशोदाजीने आपको अपना लिया, इसी प्रकार गोपिकायें भी आपको स्वाधीन कर लेतीं अथवा वे जान लेतीं। क्योंकि आप गोकुलके स्वामीके पुत्र हैं। दोनों पक्षमें तुल्यता होने पर ही भगवानको वश करनेके साधनरूप विद्या और योनि सम्बन्ध हो सकता है। (मैं भक्तोंके वश हूं, यह बतानेके लिये ही भगवान् यशोदाजीके वश हुए हैं) पुनः आप केवल वैकुण्ठाधिपति पुरुषोत्तम हैं, ऐसा नहीं है, क्योंकि हमारे समान सर्व देहियोंके अन्तरात्मा अर्थात् अन्तःकरणके द्रष्टा हो। यदि भगवान् हमारे हृदयमें उस प्रकारके तापको देखेंगे तो वे प्रसन्न होंगे। इसलिये इस विषयमें कुछ कहना उचित नहीं है।

फिर भगवान् जो पधारे हैं वे हमारे जैसे जीवोंके रक्षणके लिये ही पधारे हुए हैं। यदि भगवान् जानलें कि गोपीजन मर रही हैं तो अवश्य उनका रक्षण करेंगे। अपने रक्षणके लिये ही हमने भगवानकी प्रार्थना की है। भगवान् अपनी इच्छासे यहां पर नहीं आये हैं ऐसा 'विखनसार्थितः' इन शब्दोंमें गोपीजन कहती हैं। विखना अर्थात् ब्रह्मा। जो विशेषरूपसे खनन करे वह विखना कहलाता है अर्थात् जो सब प्रकारसे वेदके अर्थका विचार करनेवाला है वह विखना अर्थात् ब्रह्मा। इस कारणसे ब्रह्माजीने स्थापित किया हुआ भगवद्भजनका प्रतिपादक वैखानसमत प्रचलित है। इस मत-मार्गके अनुसार भगवान् पूजा स्वीकार करते हैं, इसलिये व्यंकटादि पुण्य स्थलोंमें इस प्रकारसे ही भगवानकी पूजा की जाती है। अतएव सब किसीकी पूजा भी ग्रहण करनेके लिये ब्रह्माजीने भगवानकी प्रार्थना की है। 'विश्वगुप्तये' सबके रक्षणके-लिये ब्रह्माजीने भगवानकी प्रार्थना की और सबका रक्षण यही ब्रह्माकी प्रार्थनामें मुख्य प्रयोजन है। इस प्रकार आप अन्तरात्मा हैं। अतएव सभी जीवोंके आप सखा हैं। इस प्रकारके सबके सखा आप जगतमें सख्य प्रकट करनेके लिये सात्वतोंके यादवोंके अथवा वैष्णवोंके कुलमें उदय हुए-प्रादुर्भावको प्राप्त हुए हैं। अतएव इस कारणके लिये ही जगतमें सख्य प्रकट करनेके लिये ही भगवानका यहांपर प्रादुर्भाव हुआ है।

भगवानका इस समय जो आविर्भाव हुआ है उसके प्रथम ही भगवान् जीवोंके सखा थे (क्योंकि 'सुपर्णावितौ सयुजौ सखायौ' इस प्रकार श्रुति है) इसलिये आप इच्छानुसार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ही अपनी रमण करनेकी इच्छाके अनुकूल ही हमें प्रेरित करते हैं। (जिससे हमारा नायिकाभाव नित्य हो) सबके सखा भगवान् जिस समय प्रकट हुए, उस समय अप्राकट्यमें कुछ विशेष होना चाहिये, ऐसा आपको हमें कहना है। यह विशेष भगवानका भक्तोंको आत्मनिवेदन के प्रति है (भगवान् प्रथमसे ही सबके सखा हैं और जब वे प्रकट होते हैं तब तो भक्तोंके—नायिकाओंको अपने आत्माका समर्पण करनेके लिये ही अर्थात् निज भक्तोंको स्वरूपानन्दका अनुभव करानेके लिये ही अर्थात् निज भक्तोंको स्वरूपानन्दका अनुभव करानेके लिये ही आप प्रकट होते हैं।) इसलिये हम क्या विज्ञप्ति करें? आपको जिस प्रकार उचित मालूम हो उस प्रकार आपको कार्य करना चाहिये यह तात्पर्य है ॥ ४ ॥

अन्य गोपीजन सात्विक सात्विक हैं, राजस प्रधान गोपीजनोंसे विशिष्ट—उत्तम हैं, जिसके लिये भगवानसे प्रार्थना नहीं की गयी है, वह वस्तु तो भगवान् दान नहीं करेंगे, ऐसा विचार करके यह अनन्यपूर्वा सात्विक सात्विक गोपीजन भगवानके श्रीहस्तका अपने मस्तकके साथ सम्बन्ध हो, इस प्रकार 'विरचिताभयम्' इस श्लोकमें कथन करती हैं—

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते शरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥५॥

भावार्थ—हे वृष्णिकुलमें श्रेष्ठ, हे कान्त! आपका हस्तकमल, जो संसारके भयसे आपके शरणमें आनेवालोंको अभयदान देनेवाला है, जो अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला है और जिसने लक्ष्मीजीका पाणिग्रहण किया है वह श्रीहस्त हमारे मस्तकपर रखिये ॥५॥

सुबोधिनीजी—हे स्वामिन्! हमारा हृदय विदीर्ण हो रहा है, इसलिये अपना हस्तकमल हमारे मस्तकपर रखिये, जिससे हमारे सम्पूर्ण शरीरको–हमको शान्ति प्राप्त हो। वास्तविकमें कमल शीतल रहता है। उसमें भी किसी प्रकार जलसिंचनसे उत्पन्न नहीं, किन्तु सरोवरमें उत्पन्न होने वाला कमल उसमें भी भगवानका हस्त ही सरोवर और कमलके स्थानमें है। अतएव जिसप्रकार सामान्य कमलका उद्धरण करनेसे उसमेंसे रसालता चली जाती है उसी प्रकार आपके हस्तकमलका उद्धरन करनेसे उसमेंसे रसालता चली नहीं जाती क्योंकि भगवानका हस्तकमल सरोवररूप है। यहांपर 'कान्त' यह भगवानका सम्बोधन है। प्रथम हमारे मस्तकपर भगवान् अपने हस्तका स्थापन करके हमें स्वाधीन करें, शरणमें लें, यह प्रदर्शित किया गया है। पुनः भगवानका हस्त केवल ताप ही दूर करता है ऐसा नहीं है; 'किन्तु' कामद भी है। जो अभिलाषा की जाय, उस पदार्थको भी देता है।

श्रीभगवान् पुरुषोत्तम हैं वे योगीगणके द्वारा ध्यान करने योग्य है। वे तुम स्त्रियोंका कैसे स्पर्श करेंगे! यदि कोई इस प्रकारकी शंका करे तो उसके समाधानके लिये श्रीगोपीजन कहती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हैं कि 'श्रीकरग्रहम्' लक्ष्मीजीके हस्तका ग्रहण जिसने किया है, ऐसा भगवानका हस्त है। इसलिये भगवान् गृहस्थ हैं। जब कि लक्ष्मीजीके हस्तको भगवान् ग्रहण करते हैं तब हमारे मस्तक-पर उनको स्थापित करनेमें क्या बाधा है, इस प्रकारका तात्पर्य है।

लक्ष्मीजीका भगवानके साथ विवाह हुआ है इसलिये शास्त्रके नियमानुसार भगवान् लक्ष्मीजीका हस्त ग्रहण करते हैं, किन्तु तुम्हारे मस्तकपर हस्त ग्रहण करनेमें क्या कारण है? यदि इस प्रका-रकी शंका की जाय तो गोपीजन कहती हैं कि 'संसृतेर्भयात् शरणमीयुषां विरचिताभयम्' जिस प्रकार विवाहमें शास्त्रकी विधि है उसी प्रकार शरण आये हुए मनुष्यका रक्षण करनेकी भी शास्त्रकी विधि है। शरणागतका रक्षण करना यह विवाहसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। विवाह यह जगतमें साधारण धर्म है, और शरणागतका रक्षण करना यह ईश्वरका विशेष धर्म है।

शरणागतके रक्षण करनेका यह प्रकार निषिद्ध है, अतएव रक्षण किस प्रकार हो सके? इस प्रकारकी यदि शंका की जाय तो गोपीजन कहती हैं, कि हे वृष्णिधुर्य ! वृष्णि अर्थात् यदुवंशमें उत्पन्न हुए थे उनको अनेक स्त्रियाँ थीं और उन्होंने वंशवृद्धि भी की इस प्रकारके वृष्णिके कुलमें भी आप भगवान् धुर्य अर्थात् श्रेष्ठ हैं। इसलिये आपको स्त्रियोंका पालन करना चाहिये। फिर भी संसारके भयसे हम स्त्रियाँ आपके पास आयी हुई हैं, इसलिये उनका रक्षण करना यह आपका-धर्म कर्त्तव्य है।

"हे गोपीजन ! जब आपको संसार नहीं है तब संसारका भय तुम्हें कहाँ हो सकेगा?" इस शंकाका निराकरण करते हुए गोपीजन कहती हैं कि वस्तुतः संसार स्वभावसे ही दुष्ट नहीं है, किन्तु वह असह्य दुःखका कारण होनेसे दुष्ट है। आपके विरहसे हमें भी असह्य दुःख प्राप्त हुआ है और उस असह्य दुःखके कारणरूप संसारसे भय—अर्थात् महान् दुःख हमें भी प्राप्त हुआ है। इसलिये आप दृष्ट द्वारा अथवा अदृष्ट द्वारा उसके निराकरण करनेवाले हैं। अर्थात् दुःखके कारणका नाश करना यह आपका स्वभाव है। इसलिये हमारे दुःखके कारणका भी नाश आपको ही करना चाहिये। इस प्रकार कहनेसे भगवान् हमारे दुःखके कारणका नाश करें और हमें अभयदान दें, इस प्रकार कहनेसे हम गोपीजन निर्भय हैं ऐसा सूचित हुआ। इस प्रकार भगवान् दूसरोंको अभयदान देते हैं इस कारण गोपीजन भी निर्भय हैं इन गोपीजनोंने भगवानको कान्त सम्बोधन देकर सूचित किया कि आप ही हमारे पति हैं। आप ही हमारे शास्त्रसिद्ध स्वामी हैं। स्त्रियोंका रक्षण कर्तव्य है। इस प्रकारके स्त्रियोंके सम्बन्धका आपका व्रत है इस व्रत अर्थात् नियमका अनुसरण करके आप हमारे मनोरथको पूर्ण करें यह गोपीजनोंके कथनका स्पष्ट भाव है ॥ ५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्पश्चात् अनन्यपूर्वा सात्विक तामसी गोपीजन कुछ विलक्षण रीतिसे धृष्ठता अर्थात् हिम्मत रखकरके उसी अर्थकी—अपने दुखःकी निवृत्ति और मनोरथपूर्त्तिके लिये 'व्रजजनार्तिहन्' इस श्लोकमें प्रार्थना करती हैं—

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे व्रजजनकी आर्तिको नाश करनेवाले ! हे स्त्रियोंके वीर ! हे निजजनके गर्वको मन्दहास्यसे दूर करने वाले हे सखे ! आप अपनी दासियोंको—हमको भजें, और अपने मनोहर मुखकमलके दर्शन करावें ।

श्रीसुबोधिनीजी—हे भगवन्! ये गोपीजन आपसे क्या कहना चाहिये यह नहीं जानतीं । मैं आपको निश्चय पूर्वक कहती हूँ । हे सखे ! इस प्रकारका जो सम्बोधन है उसका तात्पर्य है कि आप हमारे सखा हैं, इसलिये मैं आपको बिना कपटके निश्चित अर्थ ही कहूंगी । आप हमें भजें, इतना ही हितकारी लाभकारी उपदेश मैं आपको करती हूँ ।

ये गोपीजन इतनी अधिक हिम्मत क्यों करती हैं और हम गोपीजनोंको आप भजें इस प्रकारकी निषिद्ध बात क्यों कहती हैं ? इस शंकाका निराकरण करते हुए गोपीजन कहती हैं कि 'भवत्किंकरं', जिस प्रकार भक्त मेरा भजन करते हैं उस प्रकार मैं उसको भजता हूँ। यहतो आपकी प्रतिज्ञा ही है । इसलिये हम आपकी दासियां जिस प्रकार आपका भजन करती हैं, उसी प्रकार आप भी हमारा भजन करें । हम आपकी दासियां है यह हमारी बात और गीताजीमें की हुई आपकी प्रतिज्ञा ये दोनों प्रसिद्ध हैं । यह जतानेके लिये गोपीजन कहती हैं 'स्म' शब्द प्रसिद्धि-वाचक है ।

आप हमारा भजन करें इसमें आपकी केवल वह एक प्रतिज्ञा ही कारण है ऐसा नहीं है; किन्तु उसमें अन्य भी कारण हैं । प्रथम कारण भगवानके अवतारका प्रयोजन है ऐसा 'व्रजजनार्तिहन्' इन शब्दोंमें गोपीजन कहती हैं । व्रजजनोंकी आर्ति अर्थात् पीड़ाको नाश करे वे व्रजजनार्तिहन् कहलाते हैं । हमारी आर्ती-पीड़ा इसके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है, इससे अधिक आर्ति हमें दूसरी नहीं है । व्रजजनोंकी पीड़ाको दूर करना यह आपके अवतारका सामान्य प्रयोजन है । अब गोपीजन भगवानके अवतारका विशेष प्रयोजन बताती हुई कहती है कि 'योषितां वीर' आप योषिताओंके वीर हैं । स्त्रीजनोंको अपने आनन्दका दान करनेवाले हैं । आप सदानन्द कृष्ण हैं । आप ऐश्वर्यादि षट्गुणसम्पन्न भगवान् हैं । वीर पुरुषोंको अर्थात् दानवीर पुरुषोंको—शूरोंको अन्यमें रहे हुए कामादिका नाश करना उचित है (दान करनेवाले

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुरुष अधिक दान देकर अन्यकी अभिलाषाको पूर्ण करते हैं। इन कामादि शूरोंमें भी काम मुख्य है। अन्नादिक कामनाकी अपेक्षा शास्त्रसिद्ध काम मुख्य है, और वह अनेक प्रकारका रहता है। दानवीर पुरुष स्वरूपानन्दरूप पूर्ण पदार्थके द्वारा दूसरे मनुष्योंके भीतर और बाहर पूर्णता करके कामके आश्रय रहनेके स्थल रहित बनाकर उस कामको दूर करना होता है। इस कारणसे जगतमें दानवीर पुरुष अन्य वीर पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक कीर्ति प्राप्त करते हैं। वीर पुरुष वे हैं जो मार देने योग्य हैं उसको स्वरूपसे मारते हैं। और दानवीर पुरुष गरीब लोगोंके घरको समृद्धिसे पूर्ण करके उनके दारिद्रका नाश करते हैं अर्थात् उस घरमें दरिद्रताको रहनेके लिये स्थान न मिलनेसे दारिद्र स्वयं चला जाता है।) आप दानवीर हैं इसलिये आप महान् वीर हैं। ब्रह्मा भी जिनकी इच्छाओंको पूर्ण न कर सके ऐसे अनेक दरिद्री मनुष्योंकी भी इच्छा आप अपने अन्दर रहे हुए आनन्दके द्वारा पूर्ण करते हैं। आपकी यह वार्ता सर्वत्र प्रसिद्ध ही है इसी कारणसे 'योपितांवीर' इस प्रकारका आपका सम्बोधन है।

इस जगतमें भगवान् श्रीकृष्णके बिना अन्य किसीको योपितांवीर इस प्रकारसे कहना उचित नहीं है; क्योंकि कृष्णके बिना अन्य पदार्थोंको स्वयं कामना पूर्ण नहीं हुई है। जहाँ अपनी ही कामना पूर्ण नहीं है वहां दूसरोंकी कामना वे किस प्रकार पूर्ण कर सकते हैं! इसीसे वे कृष्णके बिना अन्य पदार्थ किंवा प्राणी 'योपितांवीर' इस सम्बोधनके योग्य नहीं। इसलिये आपके अवतारके सामान्य और विशेष प्रयोजनोंके कारणसे भी आप हमें भजें। अवतारका सामान्य प्रयोजन व्रजजनोंकी आर्ति दूर करना यह है और अवतारका विशेष प्रयोजन योपिताओंके वीर अर्थात् स्त्रीगणोंको स्वरूपानन्दका दान करना यह है।

"गोपिकायें! आपने ये जो कुछ कहा वह सत्य है, किन्तु हम सबसे अधिक हैं इस प्रकारसे जो तुम्हारेमें अभिमान दोष है उसको दूर करनेके लिये ही तुम्हारा भजन नहीं किया जाता। यदि इस प्रकार भगवान् गोपीजनोंके प्रति कहें तो उसके उत्तरमें गोपीजन कहती हैं कि 'निजजनस्मयध्वसनस्मित' निजजन अर्थात् सेवक जनका स्मय अर्थात् गर्व उनका ध्वंसन् अर्थात् नाश करनेके लिये आपका स्मित ही समर्थ है। भगवान निजजनस्मयध्वंसन कहे जाते हैं। अपने सेवकोंके अभिमानको दूर करनेका उपाय उनका परित्याग अर्थात् सेवकोंको छोड़ देना यह नहीं है; किन्तु उस अभिमानको दूर करनेके लिये आपको स्मित ही करना चाहिये। स्मित अर्थात् मन्द हास्य। भगवानका हास्य यह मनुष्योंको उन्माद करनेवाली माया है। 'हासो जनोन्मादकरी च माया।' इस प्रकार श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धके प्रथमाध्यायमें कहा गया है। यह हास्यरूपी माया जब भक्तोंमें प्रवृत्त नहीं होती। तब वह मन्द

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कहलाती है। यह यथार्थ है कि हास्य अर्थात् मायाके मोहके बिना किसीको भी अहंकार नहीं होता, इसी लिये हमारे अहंकारको दूर करनेके लिये भी साधन रूपमें आपको अपने मायात्मक हास्यका संकोच ही करना उचित है। अर्थात् आप अपने हास्यका संकोच करके मन्दहास्य अर्थात् स्मित ही करें कि जिससे हमारा अहंकार नष्ट हो जाय। यह शास्त्रीय प्रकारसे अर्थ किया। अब लौकिक प्रकारसे अर्थ किया जाता है। पुनः सेवकोंका अभिमानरूपी धर्म ही दुष्ट है। धर्मी सेवक स्वयं दुष्ट नहीं है

(इस स्थान पर रसका जो प्रतिबन्ध करते हैं उसको दोष कहा है। हम गोपीजनोंका अहंकार इसका प्रतिबन्ध करता है। इसीलिए हमारा अभिमान दुष्ट है हम स्वयं दुष्ट नहीं हैं।) यदि इस प्रकार न माने तो हम भगवानके सेवक ही नहीं हो सकते। इस प्रकार गोपीजनोंने अपने लौकिक अहंकारका भी नाश करनेके लिये भगवानको स्मित—हास्य रूप अलौकिक उपाय प्रदर्शित किया। आपके हास्यके कारण गोपीजन भी आपको अपनी जातिके तुल्य मानती हैं, किन्तु जब आपके हास्यका सङ्कोच होगा तब ही उनका गर्व चला जायगा। (अब रसमार्ग को रीतिसे अर्थ करते हैं।) पुनः अभिमान यह वास्तविकमें दोष है, क्योंकि वह रसकी प्राप्ति करनेमें प्रतिबन्धक है। जहाँ पर्यन्त स्मित युक्त मन्द हास्यवाले मुखारविन्दका गोपीजन दर्शन नहीं करतीं वहाँ पर्यन्त ही उनका अभिमान रहता है। ऐसी एक भी स्त्री नहीं है जो आपके मन्द हास्यवाले मुखारविन्दको देखकर अपना अभिमान रख सके। (इस प्रकार निजजन इत्यादि पदका शास्त्रीय, लौकिक और रसमार्गीय इन तीन प्रकारसे अर्थ किया गया है।)

स्मित यह अभिमानके नाश करनेके लिये साधनरूपसे जगतमें प्रसिद्ध नहीं है। फिर भगवानका स्मित सेवकोंके अभिमानको दूर करेगा यह किस प्रकार समझनेमें आ सकता है? इस शंकाके समाधानमें गोपीजन कहती हैं कि 'जलरुहाननं चारु दर्शय।'

जलरुह अर्थात् कमल। कमलके समान मुखमेंसे अमृत स्रवित होता है। जो कोई अमृत पान करते हैं उनमें किसी प्रकारका दोष वस्तुतः नहीं रहता। इस विषयमें यह युक्ति है। आपका स्मित सेवकोंके अभिमानको नाश करनेवाला साधन है किंवा नहीं, इस विषयमें यदि आपको शंका हो तो एकबार स्मित दर्शाकर आप स्वयं अनुभव करलें कि हमारा अहंकार उससे दूर होता है या नहीं। पुनः अभिमान यह मनका धर्म है और आपका मुखारविन्द चारु अर्थात् मनोहर है अर्थात् मनको हरण करनेवाला है। मनरूपी धर्मीका हरण करनेपर मनका अभिमानरूपी धर्म नहीं रहता। सखा सखीका भजन करे यह योग्य ही है ॥६॥

सात्विक राजसी गोपीजन सात्विक तामसी गोपीजनकी अपेक्षा उत्तम हैं, इसलिये उसी विषय को अन्य प्रकारसे 'प्रणतदेहिनाम्' इस श्लोकमें प्रार्थना करती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रणतदेहिनां पापकर्षणं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥७॥

भावार्थ—आपको प्रणाम करनेवाले प्राणियोंके पापका नाश करनेवाला, पशुओंके पीछे जानेवाला, लक्ष्मीजीके निवासरूप और कालीयनागके फणके ऊपर अर्पण किया हुआ, आपका चरणकमल आप हमारे स्तनोंके ऊपर पधरावें और हमारे हृदयमें चोरके समान रहे हुए कामका नाश करें ॥७॥

श्रीसुबोधिनीजी—'ते पदाम्बुजं नः कुचेषु कृणु' आप अपना चरणारविन्द हमारे स्तनोंके ऊपर स्थापित करें, इस प्रकार इस श्लोकमें अन्वय है। प्रथम गणके कृप् धातुसे जो कृणुष्व रूप सिद्ध होता है उससे ष्वका इस श्लोकमें छान्दस् लोप करके कृणु इस प्रकार दिया गया है और उसका अर्थ स्थापन करें, इस प्रकार होता है। स्तनोंके ऊपर भगवानके चरणारविन्द स्थापित करनेका प्रयोजन प्रदर्शित करते हुए गोपीजन कहती हैं कि 'कृन्धिहृच्छयम्' हमारेहृदयमें चोरके समान रहनेवाले कामका आप नाश करें। श्लोकमें कुचेषु स्तनोंके ऊपर इस प्रकार जो बहुवचनका प्रयोग किया गया है, वह गोपीजनोंके समूहकी दृष्टिसे किया गया है। अथवा विरहके कारण गोपिकायें अपने स्तनोंको अपनेसे भिन्न मानती हैं इस कारण। (संयोगमें स्तन भगवानके उपयोगमें आवे इसलिये स्तनोंको गोपीजन अपना मानती हैं; किन्तु विरहमें स्तन भगवद् उपयोगी न होनेसे उन्हें अपना नहीं मानकर अपनेसे भिन्न मानती हैं। इसलिये गोपीजनोंकी प्रार्थनाका भाव ऐसा है कि यदि हमारे ऊपर चरणारविन्दका आप स्थापन न करें तो फिर हमसे भिन्न और आपका पक्षपात करनेवाले ऐसे हमारे स्तनोंके ऊपर तो आप अपना चरणारविंद पधरावें।) अथवा अपने स्तनोंके अनेक विभाग टुकड़े हो गये हैं इसलिये गोपीजनोंने कुचेषु इस प्रकार बहुवचनका प्रयोग किया है ऐसा भी अर्थ होता है। पंचम श्लोकमें गोपीजनोंने अपने मस्तकपर हस्त रखनेकी भगवानसे जो प्रार्थना की उसमें उन्होंने भगवानको पास आनेको प्रार्थना की। तत्पश्चात् षष्ठ श्लोकमें हम दासियोंको आप भजें इस प्रकार गोपीजनोंने भगवानकी जो प्रार्थना की उसमें उन्होंने भगवानके साथ सम्बन्धकी प्रार्थना की। अब इस सप्तम श्लोकमें विपरीत रसकी प्रार्थना की जाती है। अथवा तिर्यक् भेदरूपी एक विशिष्ट बन्धकी भावना की जाती है। क्योंकि 'पदाम्बुजम्' ऐसा एकवचनका प्रयोग किया गया है। स्तनोंके ऊपर भगवानका चरणारविन्द पधरानेसे हृदयस्थित काम वस्तुतः नष्ट हो जाता है। (समस्त गोपीजनोंका एक समान मनोरथ न होनेसे कुचेषु यह बहुवचन ठीक नहीं है इसलिये दूसरा पक्ष दिखाते हैं।) अथवा स्त्रियोंके समूहमें जब आप लीलाशयन करें; तब गोपीजन आसपासमें रहें और भगवानका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चरणारविन्द मध्यमें रहे अर्थात् भगवानके एक चरणारविन्दको गोपीजनोंके अनेक स्तनोंका सम्बन्ध हो सके, इसलिये 'कुचेषु' यह बहुवचन घट सकता है।

"गोपीजन! तुम्हारे कठिन स्तनोंके ऊपर मेरा कोमल चरण किस प्रकार स्थापित करूं?" यदि इस प्रकार आप शंका करें तो उसका सामाधान करते हुए गोपजन कहती हैं कि 'फणिफणार्पितम्' कलीयनागकी फणाओंसे हमारे स्तन अधिक क्रूर—कठोर नहीं हैं। जैसे आपने कालीयनागकी फणोंके ऊपर चरणकमल स्थापित करके उस नागके भीतर रहे हुए दोषोंको दूर किया, उसी प्रकार हमारे स्तनोंके ऊपर भी अपना चरण स्थापित करके हमारेमें रहा हुआ दोष दूर करना चाहिये। भगवानके चरणको जो अम्बुज-कमल कहा गया है, उसका भाव यह है कि भगवानके चरण प्रत्यक्ष रीतिसे तापनाशक हैं।

"तुम सब कालीयनागकी बात कहती हो फिर भी स्त्रियोंकी छाती पर मैं चरण स्थापित करूं यह अयोग्य है।' यदि भगवान् इस प्रकार शंका करें तो गोपीजन उस शंकाका परिहार करते हुए पुनः कहती हैं कि 'श्रीनिकेतनम्' आपका चरण लक्ष्मीजीका स्थान है। जब लक्ष्मीजी आपके चरणका स्पर्श करने योग्य है फिर लक्ष्मीजीकी ही अंशरूपा अन्य स्त्रियाँ गोपीजन आपके चरणका स्पर्श करें उसमें क्या दोष हो सकता है?

"लक्ष्मीजी चतुर हैं और तुम सब गोपियाँ मूढ़ हो, इसलिये तुम्हारा स्पर्श मैं किस प्रकार करूं?" यदि भगवान् इस प्रकार शंका करें तो उसके समाधानके लिये गोपीजन कहती हैं कि 'तृणचरानुगम्' तृणचर अर्थात् गौ इत्यादि पशु। ऐसे पशुओंके भी पीछे पीछे आपका चरणारविन्द उनके हित निमित्त जाता है। स्वयं भगवानसे प्रेरित है ऐसा मानकर क्या वे पशु तृणका त्यागकरके अमृतका भक्षण करते हैं? जिस प्रकार उनके मन तृण ही अमृत है, उसी प्रकार हमारे लिये भी काम ही अमृत है, इस कारण परम कृपालु ऐसे जो आप हैं उनमें किसी भी अर्थका नाश नहीं होता।

"तुम सबने इन्द्रियोंको जीता नहीं है और तुम्हारेमें अन्यगुण भी नहीं है इसलिये अभी तुम्हारेमेंसे जब पाप नष्ट हो जायगा तब मैं तुम्हारे स्तनोंके ऊपर अपना चरण स्थापित करूंगा," यदि भगवान् ऐसी आज्ञा करें तो उसके उत्तरमें गोपीजन स्पष्ट कहती हैं कि 'प्रणतदेहिनाम् पापकर्षणम्' हम अत्यन्त नम्र हैं। हम आपको परम नमन करती हैं। आपको विशेष नमन किये बिना अन्य किसी भी प्रकारसे हम अपना पापनाश न कर सकेंगी किन्तु आपके चरणप्रसादसे अर्थात् आपकी कृपासे ही नम्र लोगोंके पाप नष्ट होते हैं। उनमें भी हम देहवाली हैं। परम नमन करनेको जो कहा गया है उसका यह भाव है कि धर्ममार्ग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इत्यादिका भी उन परम नमन करनेवालोंने सम्पूर्ण त्याग किया है। देहाभिमान होनेसे देहियोंको ज्ञान भी संभव नहीं है। जो लोग धर्मी अर्थात् भगवान्‌को विशेष रूपसे नमन करते हैं, उनकी अधोगति नहीं होती। इसलिये आपके चरणकमलका यदि चिन्तवन किया जाय अथवा दर्शन किया जाय अथवा स्पर्श किया जाय अथवा आलिंगन किया जाय तो आपको विशेष नमन करने वाले लोगोंके पापका वही चरण स्वयं नाश करता है।

सात्विक राजसिक कुमारिका गोपीजनसे भी उत्तम निर्गुण कुमारिका गोपीजनने इसी बातकी अर्थात् अपनी इच्छित वस्तुकी प्रार्थना की जो मधुरया गिरा इस श्लोकमें करती हैं।

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाप्यायस्व नः ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे कमलनेत्र, हे वीर! मनोहर वाक्यवाली और विद्वानोंको आनन्द देनेवाली ऐसी आपकी मधुरवाणीसे इन आज्ञानुसारिणी और मोह प्राप्त होनेवाली हम दासियोंको अधरामृतका पान कराकर जिआवें।

(कारिका) **हस्तेन च स्वरूपेण पदाचोपकृतिर्मता।**
मुखेन चोपकारो हि कर्तव्य इति ता जगुः ॥ १ ॥

श्रीगोपीजनोंने पंचम श्लोकमें 'शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्' इन शब्दोंमें भगवानके हस्तकमलकी प्रार्थना की, षष्ठ श्लोकमें 'भज सखे भवत् किंकरीः' इन शब्दोंमें भगवानके स्वरूपकी प्रार्थना की और सप्तम श्लोकमें 'पदाम्बुजं कृणु कुचेषु' इन शब्दोंमें भगवानके चरणकमलकी प्रार्थना की। (इस प्रकार ५-६-७ इन तीनों श्लोकोंका सार देकर अब आठवें श्लोकका सार दिया जाता है। अब अधरामृत रस भगवानके मुखारविन्दमें होनेसे उनके मुखारविन्दकी प्रार्थना बाकी रहती है। इसलिये गोपीजन 'मधुरया गिरा' इस प्रकार इस श्लोकमें कहती हैं। ॥ १ ॥

पूर्वोक्तमपि सर्वं हि यावत्स्पष्टं न भाषते।
तावत्सरसतां याति न कदाचिदिति स्थितिः ॥ २ ॥

भगवानके केवल अधररसकी प्रार्थना करनेकी अपेक्षा उनकी वाणीकी जो प्रार्थना की गयी है उसका प्रयोजन यह है कि जहाँ पर्यन्त भगवान् स्वयं अपनी मधुरवाणीसे स्पष्ट न कहें वहाँ पर्यन्त प्रथम वर्णन किया गया उन सब वस्तुओंमें किसी भी समय रसप्राप्त नहीं होता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रसमार्गकी यही मर्यादा है। यदि भगवान् विना वचन उच्चारणके रमण करें तो रस उत्पन्न नहीं होता। रसमार्गकी इस मर्यादाका सूचन करनेके लिये 'स्थितिः' इस पदका प्रयोग किया गया है।

श्रीसुबोधिनीजी—हे स्वामिन्! यह मोह प्राप्त होनेवाली गोपिकाओंको आप मधुर वाणीसे जीवित करें। मोह यह वस्तुतः मरणकी पूर्वावस्था है इन गोपीजनोंके जीवित करनेका प्रयोजन दर्शाते हुए कहती हैं कि विधिकरिः अर्थात् भगवानकी आज्ञा पालन अथवा सेवा करनेवाली ऐसी मोहग्रस्त गोपिकाओंको जीवन दान करना आप भगवानके लिये असामर्थ्य, अशक्ति नहीं है कि हे वीर! वीर पुरुषोंमें जो शौर्य स्थिति है वह दुःखी लोगोंके दुःख दूर करनेके लिये है। 'इमाः' अर्थात् ये गोपियां इस प्रकार अंगुलीके द्वारा गोपीजन अपनी जातिकी जो स्थिति है वह दिखा रही हैं उस परसे यह सूचित होता है कि अब केवल एक क्षणका बिलम्ब होते ही ये गोपियां मृत्युको प्राप्त होंगी।

"केवल मेरी वाणीसे तुम्हारे मोहका नाश किस प्रकार होगा?" भगवान् यदि इस प्रकारकी शंका करें तो उसके उत्तरमें गोपीजन कहती हैं कि मधुरया। मोह यह यथार्थमें मायारूप है। वह केवल आपके सच्चिदानन्द रूप स्वरूपसे ही नाश होता है। उसमें आपकी वाणी आनन्दरूपा है, यह प्रदर्शित करनेके लिये गोपीजन कहती है कि 'मधुरया'। मधु यह प्रीति रूप असाधारण रस है। मधुवाली अर्थात् असाधारण रसवाली वाणी मधुर कही जाती है। वल्गु अर्थात् मनोहर हैं वाक्य जिनमें ऐसी वाणी वल्गु वाक्य कही जाती है। भगवानके वाक्य सत्य और प्रियका प्रतिपादन करते हैं। जिससे वे मनोहर रहते हैं। इस प्रकार भगगवानके सद् रूपका वर्णन किया गया। भगवानकी वाणी विद्वानोंके लिये मनोज्ञ अर्थात् आनन्ददायिनी हैं। इस प्रकार भगवानके ज्ञानरूपका अर्थात् चिद्रूपताका वर्णन किया गया। विद्वान् लोग यथार्थमें ज्ञानमें ही आसक्त रहते हैं। मुख पर नेत्र रहते हैं इसलिये उन नेत्रोंका भी उपयोग करके आपको श्रीभगवानका वचनोच्चार करना चाहिये। ऐसा सूचन करते हुए गोपीजन कहती हैं कि 'पुष्करेक्षण' पुष्करकी अर्थात् कमलके समान दूसरोंके तापको दूर करनेवाले ईक्षण नेत्र हैं जिनके वे पुष्करेक्षण कहे जाते हैं। पुनः अधरसीधुः अर्थात् अधरामृतके द्वारा आप हमें जीवन दान दें। 'मधुरया गिरा, पुष्करेक्षण' और 'अधरसीधुना' इन तीनों पदोंके द्वारा गोपीजन भगवानको अनुक्रमपूर्वक कहती हैं कि आपको हमारे साथ बोलना चाहिये, हमारे सम्मुख देखना चाहिये और हमें जीवनदान देना चहिये। मूर्छित मनुष्योंके लिये मूर्च्छा दूर करनेके निमित्त महामंत्रोंका पाठ किया जाता हैं और कमल आदि शीतल द्रव्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उनके शरीर पर रखे जाते हैं। और मूर्च्छा किसी भी रीतिसे दूर न हो सके ऐसी स्थिति होने पर अमृत भी पान करनेके लिये दिया जाता है। अथवा उत्तम कोटिके वैद्य अति गुप्त रस का पान कराते हैं। हमारी यह मूर्च्छा अल्प जैसे मनुष्य दूर नहीं कर सकते हैं। इसलिये गोपीजन भगवानको 'वीर' सम्बोधन देती हैं। इस प्रकार गोपीजनोंने अमृतकी प्रार्थना की है जो उनकी अन्तिम अवस्थाका वर्णन किया गया है। प्रथम हस्त, स्वरूप इत्यादिकी प्रार्थना की गयी थी वे सब वस्तुएँ लीलाका स्मरण कराती थीं और इससे वह अधिक मूर्च्छाका कारण हुई ॥८॥

इस प्रकार भगवानके हस्त, स्वरूप, चरण और मुख इन चार पदार्थोंकी गोपीजनोंने प्रार्थना की और भगवान् ये चार पदार्थ हमें नहीं देगें, उसके कारणपर स्वयं कल्पना करके उस कारणका परिहार 'तव कथामृतम्' इस श्लोकमें करते हैं (यह वचन अनन्यपूर्वा कुमारिका राजस सात्विक गोपीजनका है।)

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीड़ितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥९॥

भावार्थ—संसारमें जो संतप्त हैं उनके लिये आपका कथारूपी अमृत जीवनरूप है। ज्ञानियोंके द्वारा स्तुति किया हुआ है, पापको नाश करनेवाला है, श्रवण होतेही आनन्द देनेवाला लक्ष्मीयुक्त है और जगतमें व्याप्त हो रहा है, उदार और भगवद्रूप व्यासादि महापुरुष इस कथाका गुणगान किया करते हैं।

श्रीसुबोधिनीजी—शंका—गोपीजनोंने जिन समस्त पदार्थोंकी प्रार्थना की वे सब पदार्थ भक्तोंको दिये जाते हैं—अभक्तोंको नहीं। विरहावस्थाके भीतर भी गोपीजन जीवित हैं, उसपरसे निश्चित होता है कि वे भगवानके भक्त नहीं हैं। भगवानको तो किसी भी पदार्थकी अपेक्षा नहीं है। जिन भगवानको लक्ष्मीजीके सदृश कोटिशः दासियाँ हैं उन्हें तुम्हारे अर्थात् गोपीजनोंके जीवित रहनेसे कोई भी प्रयोजन नहीं। इसलिये 'त्वयि धृतासवः' आपके लियेही प्राणधारण करनेवाली और 'विधिकरीरिमाः' आपकी आज्ञा पालन करनेवाली ये गोपियाँ इत्यादि गोपीजनोंके वाक्य भी अयोग्य हैं। अतएव गोपियोंके द्वारा की हुई इन समस्त पदार्थोंकी प्रार्थना व्यर्थ है।

समाधान—उपरोक्त शंका गोपीजन स्वयं उपस्थित कर उसका परिहार करती हैं। हे भगवन्! हम विरहावस्थामें जो जीवित रही हैं वह हमारे अपने प्रयत्नसे नहीं, किन्तु आपकी-भगवानकी कथा विरहावस्थामें प्राणको जानेसे रोकती हैं। जिस प्रकार आपका अर्थात् भगवत्स्वरूपका सामर्थ्य है उसी प्रकार आपकी कथाका भी सामर्थ्य है। जिस प्रकार भगवान् छः गुणवाले,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मोक्ष देनेवाले और परमानन्दरूप हैं; उसी प्रकार आपकी कथा भी ऐश्वर्य, वीर्य, श्री, यश, ज्ञान और वैराग्य इन छः गुणवाली मोक्ष देनेवाली और परमानन्दरूपा है। इस वातको प्रदर्शित करती हुई गोपीजन कहती हैं कि आपकी कथा अमृतके समान है। अमृत भगवद्रसरूप है। जो रूप सबके मरणादिका नाश करता है वह अमृत कहा जाता है। इसपरसे कथा मोक्ष देनेवाली और परमानन्दरूपा है, ऐसा सिद्ध हुआ।

अव गोपीजन 'तप्तजीवनं' इत्यादि छः पदोंके द्वारा भगवानकी कथाके छः गुणोंका वर्णन करती है। जो लोग संसारमें तप्त हैं अर्थात् जल रहे हैं उनका जीवन जिससे है वह कथा 'तप्तजीवन' कही जाती है। यथार्थमें अमृत तापका नाश करनेवाला है, यह वार्ता तो प्रसिद्ध ही है। भगवानके वैराग्य गुण अथवा ज्ञान गुण सबके तापको निवृत्त करता है। भगवानकी कृपासे ज्ञानरूपी भगवानका धर्म जीवोंमें आता है और वह जीवोंके तापको नाश करता है। भगवानकी कथा भी कर्णके द्वारा शरीरके भीतर प्रवेश करके तापको दूर करती है। जो संस्कारके योग्य है उसका ज्ञानके द्वारा नाश होता है और जो संस्कारके योग्य नहीं है उसका परित्याग अर्थात् वैराग्यसे नाश होता है। (यह पदार्थ मिथ्या नहीं है, किन्तु ब्रह्म है इस प्रकारसे जिस पदार्थका ज्ञान हो सके ऐसी स्थिति हो वह पदार्थ संस्कार योग्य कहा जाता है। ऐसे पदार्थका नाश ज्ञानसे होता है अर्थात् ज्ञानीजन उस पदार्थका स्वतन्त्र वस्तु रूपमें अनुभव नहीं करते, किन्तु स्त्री इत्यादि जो पदार्थ अपने सम्बन्धसे ज्ञानका भी नाश करते हैं ऐसे पदार्थोंका नाश परित्यागसे होता है।) इसी कारणसे संस्कार न कर सकनेवाले स्मार्त पुरुष परित्यागका ही उपयोग करते हैं। अतः ज्ञान और वैराग्य तापका नाश करनेवाले हैं। ('तप्तजीवनम्' इस विशेषणसे ज्ञान और वैराग्य इन दो धर्मोंमेंसे एक धर्मका ग्रहण होता है। यदि इस विशेषणसे ज्ञान धर्मका ग्रहण किया जाय तो 'कविभिरीड़ितम्' इस द्वितीय विशेषणसे वैराग्य धर्मका ग्रहण करना। और यदि प्रथम विशेषणसे वैराग्यका ग्रहण किया जाय तो द्वितीय विशेषणसे ज्ञानको ग्रहण करना उचित है।)

जल इत्यादि पदार्थ भी प्रत्यक्ष रीतिसे तापका नाश करते हैं। इसलिये कथाका महत्त्व नहीं रहता, इस प्रकारकी शंकाको दूर करनेके लिये गोपीजन कहती हैं कि 'कविभिरिड़ितम्' कवियोंके द्वारा अर्थात् समस्त शब्दार्थ रसिक ज्ञानियोंके द्वारा कथा रूपी अमृतकी प्रशंसा की गयी है। तात्पर्य यह है कि कथाके ज्ञानधर्मकी अथवा वैराग्यधर्मकी यहां पर प्रशंसा की गयी है।

कविगण स्पष्ट रूपसे स्त्रियोंकी भी प्रशंसा करते हैं, इसलिये कथाका माहात्म्य नहीं रहता, इस शंकाको दूर करनेके लिये गोपीजन कहती हैं कि 'कल्मषापहम्'—कल्मषको अर्थात्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पापको दूर करे उसे 'कल्मषापहम्' कहते हैं। यह तृतीय विशेषण कथाके धर्मरूपी गुणका वर्णन करता है। छः गुणोंमें धर्म भी एक गुण है। क्योंकि 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः' 'ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥ इस' प्रकारका भी किसी किसी स्थान पर पाठ देखनेमें आता है। ऊपरके श्लोकमें 'धर्मस्यके' स्थानपर 'वीर्यस्य' इस प्रकार पाठ स्वीकार करनेपर इस तृतीय विशेषणसे वीर्यरूपी इस तृतीय गुणका ग्रहण करना उचित है। इस विषयमें गोपीजन युक्ति देती हैं कि अलौकिक वस्तु सिद्ध करनेवाला वीर्य महत् है और वह धर्मरूप ही है। अथात् धर्म और वीर्य ये दोनों एक ही हैं। क्योंकि जो धर्म युक्त है वह पाप नाशक है। एवं अलौकिक वस्तु सिद्धकारक भी होता है। भगवान्‌की कथा भी पापको निवृत्त करनेवाली और अलौकिक कार्य करनेवाली है, यह सर्वत्र सुप्रसिद्ध है।

प्रायश्चित्तादि भी प्रत्यक्ष रीतिसे पापनाशक है। पुनः भगवानकी कथाकी विशिष्टता क्या है ? इस शंकाको दूर करनेके लिये गोपीजन कहती हैं कि 'श्रवणमंगलम्' प्रायश्चित्तमें गौका गोबर इत्यादि शरीरपर लगाये जाते हैं और उपवास किया जाता है। अतएव प्रायश्चित्त स्वरूपसे ही अमंगल अशुभ जैसा है। पुनः वह घोर—भयंकर होनेके कारण सुननेमें भी अमंगल है। यह भगवत् कथा उदार चरित है। भगवानके उदार चरितोंका वर्णन किया गया है। भगवानकी कथाके श्रवणमात्रसे शीघ्र ही आनन्द प्राप्त होता है यह वार्ता अनुभवसिद्ध है। इसलिये कथा 'श्रवणमंगल' है, इस चतुर्थ विशेषणसे कथाके यशरूपी गुणका वर्णन किया गया है। और भगवत्कथाके कीर्त्ति समान है।

पुत्र पितरोंको नर्कसे मुक्त करता है और इस प्रकार वह पुत्र पापका नाश करनेवाला है। इसलिये पुत्र जन्मादि प्रसंगोंका श्रवण भी कथाके समान कई एक अंशमें पापनाशक है इसलिये वह भी श्रवणमंगल कहा जाता है। फिर भगवत्कथाकी विशिष्टता क्या ? इस शंकाको दूर करनेके लिये गोपीजन कहती हैं कि श्रीमत्। पुत्रजन्मादि प्रसंग धनके व्यय कारक हैं। वे प्रसंग धन देनेवाले नहीं है। लक्ष्मीजी भी कथामृतकी अपेक्षा रखती है। अत एव कथारूपी अमृत लक्ष्मी युक्त हैं। इसलिये भगवत् कथाका श्रोता और वक्ता इन दोनोंको लक्ष्मीकी सिद्धि होती है।

मुझे राज्य प्राप्त हुआ, जब इस प्रकार मनुष्य श्रवण करता है तब इस अवस्थामें उसे लक्ष्मीजीकी प्राप्ति होती है। पुनः कथाकी विशिष्टता क्या है ? इस शंकाको दूर करनेके लिये गोपीजन कहती हैं कि 'आततम्'। आ अर्थात् सर्वत्र ततम् अर्थात् व्याप्त। जो सर्वत्र व्यापक रहता है वह आतत कहलाता है। राज्यादि परिच्छिन्न हैं। अमुक देशमें ही व्याप्त है; किन्तु भगवानका ऐश्वर्य तदनुसार परिच्छिन्न नहीं है। क्योंकि सबमें भीतर और बाहर सब

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकारसे वह व्याप्त हो रहा है। कथामृत भी सब लोकोंमें व्याप्त हो रहा है और अपना सामर्थ्य सर्व स्थलोंमें प्रदर्शित करता है।

इसलिये आपकी–भगवानकी कथा स्वरूपसे और धर्मसे आपके समान है। अतएव आपकी कथाके कारणही हम जीवन धारण कर रही हैं। हमारे स्वतन्त्र प्रयत्नसे ये प्राण नहीं रहे हैं। इस प्रकार कहनेमें गोपीजन भगवत् कथाकी श्रेष्ठताका भी वर्णन करती हैं। आप भगवान् कदाचित् हमें तजकर मारते हैं, किन्तुउस समय आपके कथारूपी अमृत हमें जीवित रखती हैं। इस प्रकार भगवत् कथा भगवानसे भी उत्तम है, किन्तु इस विषयमें एक ही भेद है और वह यह कि भगवान् रसका अनुभव करानेमें स्वतन्त्र हैं और कथामृत परतन्त्र है; क्योंकि कथामें वक्ताकी सहायताकी आवश्यकता रहती है।

जिस समय ब्रह्मादि आपकी प्रार्थना करते हैं, उस समय आप अवतार धारण करके जगतमें पधारते हैं, किन्तु यहाँ पधार करके पुनः आप अन्तर्हित भी हो जाते हैं; परन्तु आपकी कथा भूतलपर पधारकर किसी दिन तिरोहित नहीं होती। इस कारण इस प्रकारके कथामृतका जो लोग जगतमें गान करते हैं वेही 'भूरिद' अर्थात् बहु अर्थदाता हैं। 'ते' अर्थात् व्यासादि प्रसिद्ध मुनि। ये मुनि 'भूरिद' बहु अर्थदाता हैं। और अजन अर्थात् केवल भगवद्रूप किंवा जन्मादि दोषोंसे रहित हैं। (यह अर्थ करते समय मूल श्लोकमें 'भूरिदाजनाः' ऐसा समस्त पद पढ़ना चाहिये।)

भगवानका स्वरूप और कथा इन दोनोंमें एक प्रकारका जो भेद रहा हुआ है, वह प्रदर्शित किया जाता है। भगवत्स्वरूप और भगवत्कथा ये उभय समान हैं। ऐसा कहा गया है; किन्तु कथामृतमें जलके समान विरल अर्थात् प्रवाह है पिंडके अर्थात् घन पदार्थके समान घन नहीं है और केवल जब मृत्यु आती है तब ही वह कथामृत मृत्युको दूर करता है। किन्तु पिंडके समान एकत्र मिलकर अर्थात् घनरूप होकर रस उत्पन्न नहीं करता। आप भगवानका स्वरूप घनपिंड हैं और आपकी कथा प्रवाहीरस है। इसलिये प्रवाहीरसमें और घनपिंडमें जितना भेद है उतना भेद आपके स्वरूपमें और आपकी कथामें है। यदि इस प्रकार आपके स्वरूपमें और आपकी कथामें भेद न रहता तो हम आपकी कथाके लिये ही यत्न किये होते। इस प्रकार भगवत्कथाकी अपेक्षा भगवत्स्वरूप उत्तम है, तथापि भगवत्कथा विरहावस्थामें मृत्युके दूर करनेमें उपयोगी है इसलिये भगवत्कथाकी भगवत्स्वरूपसे स्तुति की गयी है। इसी कारणसे भगवानकी कथा कहनेवाले मुनियोंने भगत्कथा श्रवण कराकर लोगोंको बहुत लाभ दिया है। अर्थात् आपकी कथाके कारण-ही हम गोपीजन विरहावस्थामें जीवन धारण कर रही हैं। (इससे ऐसा विदित होता है कि कुछ गोपियाँ भगवत्कथा करती होंगी और उस कथाके कारण ही गोपीजन विरहावस्थामें जीवन धारण कर सकी होंगी।) यह वाक्य अनन्यपूर्वा अर्थात् कुमारिका राजस सात्विक गोपीजनका है।।९।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अब शुकदेवजी अनन्यपूर्वा राजस तामसीका वचन 'प्रहसितम्' इस श्लोकमें वर्णन करते हैं—

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षितं विहरणं च ते ध्यानमंगलम् ।
रहसि संविदो या हृदि स्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥१०॥

भावार्थ—हे प्रिय ! आपका अत्यन्त हास्य, प्रेमसे अवलोकन, ध्यानमंगल विहार, हृदयस्पर्शी एकान्तकी वाणी, ये सब हे कपटी ! हमारे मनको क्षोभित करती हैं ॥१०॥

श्रीसुबोधिनीजी—यद्यपि आपकी कथासे जीवित रह सकते हैं, किन्तु यदि आपके धर्म हमारेमें क्षोभ उत्पन्न न करें तभी ऐसा हो सकता है। जिस प्रकार आपमें अर्थात् भगवानमें ऐश्वर्यादि छः गुण हैं उसी प्रकार क्या मोह करनेवाले भी छः गुण आपमें रहे हुए हैं। (इसलिये केवल आपकी कथासे ही हम अब जीवित रह नहीं सकतीं ।) क्या मोह करनेवाले छः गुण भगवानमें रहे हुए हैं। यदि ऐसा न हो तो केवल आपकी कथासे ही हमारा कार्य सिद्ध हो जाय। (भगवानके व्यामोह गुणोंके कारण ही कथामें हमारी निष्ठा नहीं रह सकती।) भगवानमें मोह करनेवाले गुण हैं, इस बातका प्रमाण यह है कि भगवान् मोह उत्पन्न करनेके लिये मायाके द्वारा कपटीकी लीला भी करते हैं। (भगवान् मायाके द्वारा कपटीकी लीला करते हैं इस प्रकार भगवानके ऊपर आक्षेप करना यह यथार्थ नहीं है। यदि किसीको इस प्रकार-की शंका हो तो उसका परिहार करते हुए गोपीजन कहती हैं कि) जीव अपने स्वभाव दोषके कारण भगवानमें तदनुसार देखता है। जिस प्रकार ज्वरवाले मनुष्यको अन्न रस रहित लगता है, उसी प्रकार गोपीजनको अपने स्वभावदोषके कारण ही भगवान् कपटी मालूम पड़ते हैं। यथार्थमें भगवान् स्वयं कपटी नहीं हैं।) इसी कारणसे गोपीजन कहती हैं कि आपके हास्यादि गुण हमारे मनको क्षुभित करते हैं।

प्रहसितम्—अर्थात् खूब हँसना, ये गोपीजन अपने तामस भावसे ही खेदको प्राप्त हुई हैं। इसलिये उसका त्याग करके भगवान् अन्य गोपीके साथ स्थिति करते हैं। और तत्पश्चात् इस गोपीजनके समीप आकर खूब हँसते हैं। इस कारण इस गोपीजनको भगवानके प्रहसनसे अत्यन्त क्षोभ होता है। यह गोपीजन भगवानको प्रिय इस प्रकार जो सम्बोधन देती हैं उसका तात्पर्य यह है कि आपका सम्बन्ध भी जब हमें स्मरण होता है तब हमें क्षोभ होता है। इस पदसे यह सिद्ध होता है कि जिन गोपीजनोंका भगवानके साथ सम्बन्ध नहीं हुआ है उनको क्षोभ नहीं होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रेमवीक्षितम्—पुनः आपका प्रेमपूर्वक अवलोकन यह भी हमें क्षोभ उत्पन्न करता है। आपका प्रेमविक्षण हमें तीन प्रकारसे क्षोभ उत्पन्न करता है। (१) संयोगदशामें आपने हमारे ऊपर प्रेमसे जो अवलोकन किया विरहदशामें उसका स्मरण होने पर हमें अधिक क्षोभ होता है। अथवा (२) दूसरी गोपीजन पर आपने जो प्रेमसे अवलोकन किया है, उसका स्मरण होने पर हमें क्षोभ होता है। अथवा (३) आपका हमारे ऊपर प्रेमपूर्वक वह ऊपर ऊपरसे विश्वास उत्पन्न करता है, किन्तु भीतरसे कपटरूप होकर वह हमें क्षोभ प्राप्त कराता है। यदि इस प्रकार हम न माने तो हमारा काममें विशंवाद अर्थात् विरोध उत्पन्न न हो। अथवा आपका प्रेम वीक्षण हमारे मनकी परीक्षा करनेवाला है। (जिनका प्रेम प्रसिद्ध है उनके प्रेमके लिये परिक्षा की जाय तब उन्हें क्षोभ हो यह बात स्पष्ट है। इसी कारणसे आपका प्रेमवीक्षण हमें क्षोभ उत्पन्न करता है।) पुनः आपका प्रेम वीक्षण आशा उत्पन्न करानेवाला है और आशाके कारण श्रम होता है और श्रमके कारण क्षोभ होता है।

विहरणम्—आपका विहरण भी हमारेमें क्षोभ उत्पन्न करता है। विहरण अर्थात् वंशी बजाते और अन्य क्रिया करते करते भगवानका चलना। जब भगवान् त्रिभंग ललित स्वरूपसे व्रजमें पधारते हैं तब स्वयं वेणुनादके द्वारा स्वामिनियोंके भीतर जो भगवदीय रस रहा हुआ है, उसको बाहर प्रगट करते हैं। (वेणु बजाते हुए जब आप चलते हैं तब आप अपना रस अपने स्वरूपसे आप बाहर स्थापित करते हैं—प्रगट करते हैं. ऐसा भी अर्थ हो सकता है।) अर्थात् भगवदीय रसका विशेष हरण हुआ है जिस कारण वह त्रिभंग ललित स्वरूप विहरण कहलाता है। और उसीसे वह हमें क्षोभ उत्पन्न करता है। इस विहरणका हम प्रथम ध्यान करते थे, उस समय वह ध्यान भी मंगल अर्थात् आप प्रभुरूपी शुभ फल प्रदान करता था। उसी विहरणका ध्यान इस समय हमें क्षोभ प्राप्त करा रहा है। क्योंकि आपने हमारे भीतर ऐसी स्थिति की है किंवा नहीं यह हम नहीं जानते।

मूल श्लोकमें जो 'ते' पद है उसका सम्बन्ध 'प्रहसितम्' इत्यादि सभी शब्दोंके साथ करनेका है। जब 'ते' पदका सम्बन्ध सर्वत्र लेना है तब उसका प्रयोग 'प्रहसितम्' के साथही प्रथमही करना उचित था; किन्तु तदनुसार क्यों नहीं किया गया ? इस शंकाका समाधान करती हुई गोपीजन कहती हैं कि भगवान् अन्य मायाके द्वारा भी करते हैं, किन्तु ध्यान मंगल विहरण द्वारा क्षोभ स्वरूपसे ही करते हैं, अतएव उस पदका मुख्य प्रयोग 'ध्यानमंगलं विहरणं' के साथ ही किया गया है। इस प्रकार भगवानके रूपके सम्बन्धमें प्रहसित, प्रेमविक्षित, ध्यान-मंगलविहरण, और सम्बन्ध ये चार पदार्थ क्षोभ उत्पन्न करते हैं, इस प्रकार कहा गया है। (प्रिय)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह सम्बोधन नामके चतुर्थ पदार्थकी सूचना करता है। कुछ विचारकोंके अभिप्रायसे चार पदार्थ इस प्रकार हैं—प्रहसित, प्रेमविक्षित, विहरण और ध्यानयोग।

भगवानके रूप सम्बन्धी चार क्षोभजनक सम्बन्धी दो क्षोभजनक पदार्थोंका वर्णन करते हुए गोपीजन कहती हैं कि 'रहसि संविदः या हृदि स्पृशः' रहस्यमें अर्थात् एकान्तमें संविद अर्थात् ज्ञानरूप भगवानकी वाणी अथवा बन्धादि ज्ञान देनेवाले शास्त्रमें वर्णित ज्ञान और उसमें भी जो वाणी हृदिस्पृशः अर्थात् हृदयमें जानेवाली हृदयको स्पर्श करनेवाली अथवा केवल नायकको अनुकूल हो ऐसी नहीं, किन्तु हमें ही अनुकूल हो ऐसा जो बन्धज्ञान वह संविद्। इसलिये इस प्रकार ये समस्त यद्यपि सुख देनेवाले हैं, फिर भी जब आप हमें वंचना करते हैं तब वे सब हमें क्षोभ उत्पन्न करते हैं, यह अर्थ सभीको अनुभवसिद्ध है। ऐसा गोपीजन 'ही' पदके द्वारा कहती हैं ॥१०॥

अब शुकदेवजी अनन्यपूर्वा राजस राजसी गोपीजनके वाक्यका वर्णन करते हैं--

चलसि यद्व्रजाच्चारयन्पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥११॥

भावार्थ--हे नाथ! जिस समय आप व्रजमेंसे पशुओंको चराते हुए चलते हैं, उस समय कमलसे भी कोमल ऐसे आपके चरण उन पत्थर, तृण एवं दर्भादिके अंकुरोंसे व्यथित होते हैं। इसलिये हे कान्त! हमारे मनको खेद होता है ॥११॥

श्रीसुबोधिनीजी--आपको यथार्थमें खेद नहीं होता, आप स्वस्थ रहते हैं तथापि आपके प्रति स्नेह होनेके कारण आपके लिये हमें तो खेदबुद्धि होती है। किन्तु हमें आपके लिये यथार्थ खेद होता हैं उस समय भी आपको हमारे लिये खेदबुद्धि नहीं होती है, यह न्यायसे विरुद्ध है। इस न्यायविरोधको मानों प्रदर्शित करते हों उस प्रकार ये गोपीजन कहती हैं कि 'यत् व्रजात् पशून चारयन् चलसि' जिस समय आप व्रजमेंसे पशुओंको चराते हुए चलते हैं, उस समय कमलसे भी सुन्दर कोमल आपका चरण हे नाथ! मार्गस्थित पत्थर; घास और अंकुरोंसे पीडित होता है। शिला अर्थात् पत्थर, तृण अर्थात् घास और दर्भ अर्थात् कुशाके अंकुर ये तीनों क्रमशः तामस, सात्विक और राजस हैं। अथवा शिलतृणाङ्कुरैः का अन्य प्रकारसे विग्रह कर सकते हैं। शिलारूप जो तृण वह शिलातृण अर्थात् कठिन तृण उसके अङ्कुर अत्यन्त कठिन एवं तीक्ष्ण रहते हैं। उनसे आपका चरण क्लेशको प्राप्त होता है। यथार्थमें तो आपका चरण क्लेशको प्राप्त होता नहीं है, तथापि हे कान्त, हे भर्ता, हमारा मन खिन्न होता है। मूल श्लोकमें

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'व्रजात्' पद है वह यह सूचित करता है कि प्रातःकालसे हमें खेद होता है। आपके चलने मात्रसे खेद होता है, इसलिये इस श्लोकमें प्रथम 'चलसि' पद द्वारा आपके चलनेकी बात कही गयी है।

वास्तविकमें आपके चरण हमारे स्थानका त्याग करके अन्य स्थलमें नहीं जाते तथापि आप ही आपके चरणोंको चला रहे हैं और अन्य स्थलमें ले जाते हैं। (पशुओंको चरानेके लिये आप चलते हैं अर्थात् पशुओंको चरानेके लिये आपको ही चलना अच्छा लगता है, आपके चरणोंको नहीं। इस प्रकार गोपीजनोंनें भगवानसे कहा।) पुनः व्रजमें रहनेवाली गौओंको अरण्यमें ले जाते हैं उनको चरानेका काम चलते मार्गसे जानेपर नहीं हो सकता। इसलिये जहाँ चालू मार्ग नहीं रहता वहाँ होकर जाना पड़ता है। पृथ्वी इत्यादिके ऊपर कृपा करनेके लिये आप पादुका भी धारण नहीं करते। पुनः जिन पशुओंका पालन करना है उनके चमड़ेकी पादुका पहनना उचित नहीं है। इसलिये आपके कमलके समान सुन्दर चरण पत्थर, तृण एवं दर्भके अंकुरोंसे क्लेशको प्राप्त होते हैं। आपके चरण कमलके सदृश हैं और कमल सदैव जलमें रहता है इसलिये आपके चरणको जलमेंही स्थिति करना उचित है अथवा जलपूर्ण घटादिमें स्थिति करना उचित है। (इसका भाव इस प्रकार है। कमल जलमें उत्पन्न होता है इसलिये वह सरोवर आदि जलमेंही स्थिति करने योग्य है। आपका चरणरूपी कमल चलाने योग्य नहीं है, इसलिये व्रजमेंही उसकी स्थापना करनी उचित है। कदापि आपके चरणरूपी कमलको चलित भी कर सकते हैं तो भी बिना जलके स्थानमें उसको स्थापित करना उचित नहीं है। इसलिये जलपूर्ण घटादि पात्रमें उसका स्थापन करना उचित है। जिस प्रकार सरोवर रूपी अपने स्थानमेंसे उठाया हुआ कमल जलपूर्ण घटादि पात्रमें स्थिति करता है, उसी प्रकार व्रजरूपी अपने स्थानमेंसे उठाया हुआ आपका चरणकमल जलसे अर्थात् रससे भरे हुए हमारे स्तनरूपी कलशोंमें स्थिति करे यही योग्य है।

(श्रीमहाप्रभुजी अब 'नलिनसुन्दरम्' का दूसरा अर्थ समझाते हैं) आपके चरण कमलसे भी अति सुन्दर हैं। इसलिये उन चरणोंको लक्ष्मीजीमें स्थिति करनी चाहिये। (कमल सरोवर रूप अपने स्थानमें स्थिति करता है अथवा उस कमलको सरोवरसे हटाया जाय तो वह जलपूर्ण पात्रमें स्थिति करता है। भगवानका चरण कमलके समान है, इसलिये उस चरणने लक्ष्मी रूप अपने स्थानमें रहना उचित है अथवा वह चरण वहाँसे चलकर दूसरे स्थानमें जाय तो उसने जलपूर्ण—रसपूर्ण हम गोपीजनोंमें स्थित करना उचित है। भगवानका चरण कमलके समान है, लक्ष्मीजी सरोवरके समान हैं और गोपियां जलपूर्ण कलशके समान हैं।)

गोपीजन भगवानको यहाँ नाथ सम्बोधन करती हैं जिसका भाव इस प्रकार है। गौ चरानेके कार्यके लिये आपके पास अनेक सेवक हैं, तथापि आप स्वयं उनको चरानेके लिये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पधारते हैं। वनमें तीन प्रकारकी भूमि रहती हैं। एक पर्वतरूपा, दूसरी अरण्यरूपा और तीसरी कच्छरूप आर्द्र कादों कीचड़वाली इन तीन प्रकार की भूमिमें क्रमशः पत्थर, तृण और अंकुरमेंसे एक हैं। अर्थात् पर्वतमें पत्थर, अरण्यमें तृण और कच्छमें दर्भादि अंकुर हैं। अथवा पत्थर तृण और अंकुर ये तीनों सब स्थानोंमें हैं। अवसाद अर्थात् अशक्तिके कारण एकही स्थानपर स्थित करना। (भगवानके चरणको काँटा लगनेपर वे चल नहीं सकते हैं, इसलिये एकही स्थानमें उनको स्थिति करनी पड़ती है।)

इस प्रकार भगवानको जिस समय एक ही स्थलपर स्थिति करनी पड़ती है उस समय हम गोपीजनोंको अपने मनमें ऐसा विचार आता है कि हम स्वयं वहाँ पर जाकर अपने हृदयमें ही भगवानके उन चरणकमलको स्थापित करें। (इस प्रकार गोपीजनोंको अपनी भावना अनुभवके कारण भगवानकी वनलीलाका ज्ञान है' ऐसा वर्णन किया गया है।)

अथवा 'मनःकान्त' इस प्रकार समस्त पद लेना और इसका अर्थ ऐसा होता है कि हे मनःकान्त ! अर्थात् मनके कान्त आपने हमारे मनका रक्षण किया है तथापि वह रह नहीं सकता। (इस प्रकार अर्थ करनेमें मूल श्लोकमें 'मनःकान्त' इस पदमेंसे 'मनः' इस पदकी आवृत्ति समझनी) ॥११

इस प्रकार पंचम श्लोकसे प्रारंभ करके एकादशवें श्लोक पर्यन्त सप्त प्रकारके अनन्य-पूर्वा गोपीजनोंका वर्णन किया गया। (ये सात प्रकार इस प्रकार हैं) सात्विक सात्विक, सात्विक-तामस, सात्विकराजस, निर्गुण, राजससात्विक, राजसतामस और राजस।) ये प्रथमके चार श्लोकोंमें चार प्रकारके अन्यपूर्वा गोपीजनोंकी प्रार्थनाका वर्णन किया गया है। (ये चार प्रकार इस प्रकार है—सात्विकराजस, सात्विकतामस, सात्विकसात्विक और निर्गुण) अब आगे क्रमशः छ प्रकारके अन्यपूर्वा गोपीजनोंका वर्णन किया जाता है। उसमें प्रथम १२वें श्लोकमें राजस तामसी अन्यपूर्वा गोपियोंका वचन है। अन्यपूर्वा गोपीजन पति प्रभृतिकी आज्ञाका अनुसरण करनेवाली होनेसे दिवसमें वनमें जाकर भगवानके दर्शन नहीं कर सकतीं। (दिवसमें वे भगवानके गुणगान करके रमण करती हैं।) इसलिये आप भगवान् जब सन्ध्या समय श्रीगोकुलमें पधारते हैं तो अन्यपूर्वा गोपीजन उनके दर्शन करती हैं और उसीसे उनमें काम उत्पन्न होता है तत्पश्चात् वे रजोगुणके कारण बन्धकी प्रार्थना करती हैं; किन्तु जो गोपीजन अनन्यपूर्वा हैं उनका काम नित्य है अर्थात् अनन्यपूर्वा गोपीजन विवाहित नहीं हैं इस कारण वे पतिका प्रतिबन्ध न होनेसे दिवसमें वनमें जाकर रात्रिमें भगवानके पास जाकर इस प्रकार रात्रिदिवस रमण करती हैं। इस कारण उनका काम भी रात्रिदिवस अस्तित्वमें होनेसे नित्य ही है। अनन्यपूर्वा गोपीजन यद्यपि अन्य-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूर्वा गोपीजनोंके समान पराधीन हैं तथापि उनका काम नित्य है ऐसा समझना। इस प्रकार जो गोपीजन अनन्यपूर्वा हैं उनका काम नित्य होनेसे भगवान् उन्हें कामका दान नहीं करते; किन्तु जो गोपीजन अनन्यपूर्वा हैं उन्हें कामका दान करनेकी भगवानको आवश्यकता हैं अतएव प्रथम बारहवें श्लोकमें सन्ध्या समय भगवानके दर्शन होनेसे अन्यपूर्वा गोपीजनोंको काम उत्पन्न होता है। इस रीतिसे अन्यपूर्वा गोपीजनोंको काम भी भगवान् ही उत्पन्न करते हैं। अर्थात् 'दिन' 'परीक्षये' इस श्लोकमें भगवानने अन्यपूर्वा गोपीजनोंको कामका जो दान किया है उसका वर्णन है। तेरहवें श्लोकमें रजोगुणके कारण बन्धकी जो प्रार्थना की गयी है उसका वर्णन है और चौदहवें श्लोकमें सत्वगुणके कारण अधरामृतकी जो प्रार्थना की गयी है उसका वर्णन है।

दिनपरीक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम्।
धनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥१२॥

भावार्थ—हे वीर! दिवस पूर्ण होने पर (सन्ध्याकालमें) कृष्णकेशसे आच्छादित (ढके हुए) और गोधनकी रजवाले कमलके समान मुखको धारण करनेवाले और वारम्वार दर्शन कराते हुए आप हमारे मनमें कामका दान करते हैं ॥१२॥

श्रीसुबोधिनीजी—दिन परिक्षय होनेपर अर्थात् दिवसका क्षय होने पर सन्ध्याकालमें दिवसका क्षय ऐसा जो कहा गया है वह ऐसा सूचित करता है कि इन गोपीजनोंको दिवसके ऊपर द्वेष है। (इस श्लोकको कहनेवाली गोपीजन राजस तामसी है; क्योंकि वे सन्ध्याकालकी भगवानको लीलाका वर्णन करती हैं।) सन्ध्याकाल यह रजोगुणका समय है; क्योंकि उस समय गोदोहन एवं अन्य ऐसे कार्योंके कारण गोपीजनका चित्त व्यग्र बनता है। पुनः सन्ध्याकाल तमोरूप कामको जागृति करता है, इसलिये वह तमोगुणका भी समय है। (इस प्रकार सन्ध्याकाल राजस तामस समय है और इसीसे उस कालकी भगवानकी लीलाका वर्णन करनेवाली गोपीजन भी राजसतामसी रहती हैं।) भगवानके मुखकमलके लावण्यरूप अमृतका पान करते हैं। ये रसको जागृत करनेवाले रहते हैं, अतएव हे वीर! कृष्णकेशसे ढके हुए वनरुह कमलके सदृश मुखको धारण करनेवाले आप हमारे मनमें कामका दान करते हैं।

[सन्ध्या कालके समयमें जब भगवानका मुख कृष्ण केशसे आच्छादित रहता है तब वह मुख कृष्ण केशके तेजसे व्याप्त रहता है। इसलिये ओष्ठ और नेत्रोंमें भी लालिमा मालूम नहीं होती। इस कारण मूलश्लोकमें 'नीलकुन्तलैः और वनरुहाननं' इस प्रकार जो कहा गया है वह यह सूचन करता है कि भगवानका मुख कुवलय अर्थात् रात्रिके कमल सदृश है। इससे ऐसा मालूम होता है कि प्रियाओंके अर्थात् गोपीजनोंके मुखरूपी चन्द्रके दर्शनसे भगवानके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुखरूपी कुवलय अर्थात् रात्रिकमल उत्तरोत्तर अधिक विकसित होता है और इसके पूर्व अर्थात् प्रियाओंके मुखरूपी चन्द्र दर्शनके पूर्व भगवानका मुखरूपी कुवलय विकसित नहीं रहता। इस पदसे यह सूचित होता है कि प्रियकी अर्थात् भगवानकी आशक्ति सब भक्तोंमें हैं। समस्त गोपीजनोंमें भगवानकी आशक्ति होनेके कारण मूल श्लोकमें जल पदका प्रयोग न करके 'वनरुहाननम्' में वन पदका प्रयोग किया गया है। इसका भाव यह है कि व्रजमेंसे भगवान् पुनः पधारे हैं तथापि गोपीजनोंमें आशक्ति होनेके कारण इस रमणके लिये पुनः वे वनमें प्रवेश करेंगे। अर्थात् भगवान् वनमें ही विराजेंगे। अतएव उनका वनमें रहना सिद्ध होगा। वनमें कुवलयकी जो अवस्था रहती है वह अवस्था प्रदर्शित करनेके लिये कुवलयके उन उन धर्मोंको धारण करनेवाले मुखका भगवान् दर्शन कराते हैं, ऐसी ध्वनि है।]

धन द्वारा अर्थात् गोधनके द्वारा गौओंके चरण रज द्वारा भगवानका मुख रजयुक्त है। इस प्रकारके मुखका भगवान् वारम्वार दर्शन कराते रहते हैं। भगवान् मार्गके मध्यमें चलते हैं और दोनों तरफ स्थित गोपीजनोंको क्रमपूर्वक देखते हैं। इसलिये भगवान् अपना मुख बार बार दिखाते हैं ऐसा कहा गया है। अथवा भगवान् आगे चलते चलते वार वार अपने मुखको फेरकर गोपीजनोंको देखते हैं इससे भगवान् अपना मुख वार बार दिखाते हैं ऐसा कहा गया है।

भगवान् गोपीजनोंको वार बार अपने मुखका दर्शन कराते हैं और उस प्रकार अपनी इच्छा प्रकट करते हैं। इस कारण से गोपीजनोंमें काम उत्पन्न होता है। यदि भगवान् गोपीजनोंको एक दृष्टिसे निरन्तर देखें तो उसी समय उसी स्थलमें रस भोग हो जाय इसलिये कामको उत्पन्न होनेका अवकाश न रहे, इस कारणसे भगवान् अपना मुख गोपीजनोंको जो वार वार दिखाते हैं वह गोपीजनोंके कामरूप अग्निको मानों प्रदीप्त करनेकी क्रिया करते हैं, ऐसा मालूम होता है। गोपीजनोंको अपने मुखका बारम्वार दर्शन कराकर गोपीजनोंके काम रूपी अग्निको फूँककर उस कामरूप अग्निको पूर्ण करनेके लिये अथवा उसका नाश करनेके लिये भगवानको युद्ध अवश्य करना चाहिये। इस प्रकार गोपीजन वीर सम्बोधनके द्वारा सूचित करती हैं। गौके चरणकी रजसे धूसरित आपका मुख आपके श्रमको सूचित कर रहा है। आपका यह श्रम हमारे द्वारा ही नष्ट होगा अन्यसे नहीं। आपका श्रीमुख 'वनरुह' है अर्थात् वनमें ही आपके श्रीमुख सर्वथा भोग करने योग्य हैं। इसलिये आप वनमें ही पधारे हुए हैं। गोपीजन भगवानके मुखको 'वनरुह' इस प्रकार वर्णन करती हैं। इसलिये 'मैं वनमें रतिका दान करूंगा' इस प्रकार यदि भगवान् युक्ति करें तो उसका खण्डन हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मूल श्लोकमें जो 'बिभ्रति' पद है वह ऐसा सूचित करता है कि भगवान् बल-पूर्वक श्रीमुख उसी अवस्थामें कृष्ण केशसे अच्छादित और गोरजसे धूसरित बने हुए मुखको उसी अवस्थामें रखते हैं यदि भगवान् अपने मुखका मार्जन करके पधारें तो उनके प्रसन्न—स्वच्छ मुखका दर्शन करनेसे ज्ञान ही प्राप्त हो जाय अर्थात् आपका श्रीमुख भक्त्यात्मक है, इसलिये स्नेह रसका ही अनुभव हो; किन्तु उस समय आपका श्रीमुख गोरज युक्त हैं इसलिये ज्ञान अथवा स्नेह रसका अनुभव नहीं होता है। एवं क्रोध नहीं होता है, किन्तु काम ही उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार पात्र पकड़कर उसमें रहा हुआ अन्न भोगके लिये दिया जाता है उस प्रकार आपका मुखरूप पात्र भक्तोंके सम्मुख रखकर आप अपने श्रीमुखमें स्थित काम रस हमारे मनमें स्थापित करते हैं, इसलिये जो इस प्रकारका श्रीमुख आप धारण करते हैं वह हमें कामका दान करनेमें कारणभूत है। सन्ध्या कालके समय आपने भोगके लिये हमें कामका ही दान किया, इसलिये आपको भोग करना उचित है। यह काम आगन्तु है और आपने हमें इसका दान किया है इसलिये उसका पूरण अन्य किसी भी प्रकारसे भोग किये विना केवल आश्वासन आदि देनेसे नहीं हो सकेगा, इसलिये इस आगन्तुक कामकी पूर्ति आप भोग करके करें ॥ १२ ॥

जिस प्रकार 'प्रणतदेहिनाम्' इस सप्तम श्लोकमें अनन्यपूर्वा गोपीजनने भगवानसे प्रार्थना की कि आप अपना चरणकमल हमारे हृदयपर पधरावें इसी प्रकार इस 'प्रणतकामदम्' इस श्लोकमें पीछेवाले अन्यपूर्वा राजस तामस गोपीजन बारहवाँ श्लोक बोलती हैं। उन गोपीजनकी अपेक्षा उत्तम अन्यपूर्वा राजस तामस गोपीजन भगवानसे प्रार्थना करती हैं कि आप अपना चरण कमल हमारे हृदय पर पधरावें।

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि।
चरणपंकजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३॥

भावार्थ—हे रमण! आधिहरणकर्त्ता अनन्य भावसे आपके शरणागत जीवोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, ब्रह्मा द्वारा पूजित, पृथ्वीके अलंकार रूप, आपदमें ध्यान करने योग्य, कल्याण रूप आपका चरणारविन्द हमारे स्तनपर स्थापित करें ॥ १३ ॥

श्रीसुबोधिनीजी—'प्रणतदेहिनाम्' वह सप्तम श्लोक अनन्यपूर्वा गोपीजनका है और यह श्लोक अन्यपूर्वा गोपीजनका है। इसलिये इस श्लोकमें पुनरुक्ति नहीं है। इतना ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं प्रथमके 'प्रणतदेहिनाम्' इस श्लोककी अपेक्षा इस श्लोकमें भगवानके चरणका माहात्म्य अधिक है। इस श्लोकमें भगवानके जो चरणका वर्णन किया गया है वह भक्तोंके लिये गुणदाता है प्रथम 'प्रणतदेहिनाम्' उस श्लोकमें जो चरणका वर्णन किया है वह केवल दोषका दूर करनेवाला है। (इस प्रकार भगवानके चरणका जो दो श्लोकमें वर्णन किया गया है उसमें पुनरुक्ति नहीं है।

हे रमण ! अर्थात् रति करनेवाले हे भगवन् ! हमारे इन स्तनोंके ऊपर अपना चरण कमल पधराइये। अपने स्तनोंके उपर भगवानका चरण कमल पधरानेकी गोपीजन भगवानके प्रति जो प्रार्थना करती हैं, इसके प्रयोजनको स्पष्ट करती हुई गोपीजन कहती हैं कि 'आधिहन्' अर्थात् आहिन्—मनकी-हृदयकी व्यथाको नाश करनेवाला अथवा 'आधिहन्' के स्थानमें आर्तिहन् भी पाठ है और उसका अर्थ आर्तिका अर्थात् चिन्ताका नाश करनेवाला इस प्रकार होता है। हृदयका ताप और चिन्ता इन दोनोंका निवारण करना है। आपका चरण कमल सदृश है और कमल तापको दूर करता है यह स्पष्ट है।) इसलिये इस प्रकार दृष्ट उपकार से ही हमारे हृदयका ताप चला जायगा। आपका जो चरणकमल हमने अपने हृदयमें स्थापित किया है वह बाहर नहीं आता। इसलिये आप अपना चरण कमल बाहर हमारे वक्षस्थलपर स्थापित करें। इस प्रकार हमारे हृदयका ताप तथा चिन्ता दूर करनेकी कृपा करें।

जिस प्रकार भगवानमें ऐश्वर्यादि छ गुण रहे हुए हैं उसी प्रकार भगवानके चरण कमलमें भी छः गुण रहे हुए हैं। उसमें प्रथम ऐश्वर्य है ऐसा 'प्रणतकामदम्' अथात् शरणागतोंकी इच्छाको पूर्ण करनेवाला इस शब्दमें गोपीजन कहती हैं कि भगवानके प्रति जो विशेष नम्र हैं वे 'प्रणत' अर्थात् अनन्य भावसे शरणागतोंके कामको अर्थात् मनोवांछित फलोंको देनेवाला भगवानका चरणकमल है। अनन्यभावसे शरणमें आये हुए जीवोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले ईश्वर ही रहते हैं। दान करने योग्य जो काम इच्छित पदार्थ ईश्वरके मनमें स्थित है उसका ग्रहण स्तब्ध अर्थात् शरणमें न जानेवाले जीवों द्वारा सम्भव नहीं है। इसलिये मूल श्लोकमें 'प्रणतच्च' अर्थात् भगवान्की शरणमें स्थित रहनेको कहा गया है। (अर्थात् भगवान् जिस इच्छित पदार्थका दान करते हैं उनको ग्रहण करनेके लिए भी स्तब्धताका त्याग करके भगवानका अनन्याश्रय करनेकी आवश्यकता है।)

'पद्मजार्चितम्' ब्रह्माजीके द्वारा पूजित भगवानका चरण कमल इस शब्दसे भगवानके चरण कमलकी धर्मरूपताका वर्णन किया गया है। 'ब्रह्माजीकी' प्रार्थनासे ही भगवानके चरण-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कमलका यहाँ पर आगमन हुआ है। (ब्रह्माजी भगवानके चरण कमलकी धर्मबुद्धिसे ही पूजा करते हैं। गोपीजनोंके समान स्नेहसे पूजन नहीं करते।)

'धरणिमण्डनम्' पृथ्वीके अलंकार रूप इस पदके द्वारा भगवानका चरणकमल कीर्त्तिरूप है ऐसा गोपीजन कहती हैं। भगवानका चरणकमल धरणीका अर्थात् पृथ्वीका मण्डन अर्थात् अलंकार है अथवा शोभा है।

'आपदि ध्येयम्' भगवानका चरणकमल दुःखमें ध्यान करने योग्य है। इसलिये भगवानका चरण श्रीरूप अथवा कीर्त्ति रूप है (यदि 'धरणिमण्डनम्' पदके द्वारा भगवानके चरणकमलकी कीर्त्ति ग्रहण करना हो तो 'आपदि ध्येयम्' इस पदके द्वारा भगवानके चरणकी शोभाका वर्णन करना है; किन्तु यदि 'धरणिमंडनम्' पद द्वारा भगवानके चरणकमलकी शोभाका ग्रहण किया जाय तो 'आपदि ध्येयम्' इस पद द्वारा भगवानके चरणकमलकी कीर्त्तिका ग्रहण करना चाहिये।

भगवानके चरणको कमलकी उपमा दी गयी है इसलिये स्वरूपकी—चरणकी श्रेष्टता कही गयी है। भगवानका चरणकमल 'शन्तमम्' सबसे अधिक कल्याणरूप है। इसलिये वह ज्ञानरूप है; क्योंकि ज्ञान कल्याण रूप है।

भगवानके लिये 'आर्तिहन्' इस प्रकार सम्बोधनका प्रयोग करनेसे और 'ते चरण पंकजम्' आपका चरणकमल इस प्रकार चरणकमलका भगवानके साथ सम्बन्ध प्रदर्शित करनेवाले वैराग्यका वर्णन किया गया है। इसलिये भगवानके सम्बन्धसे ही श्रीभगवानका चरणकमल वैराग्य युक्त है।

भगवानके लिये रमण सम्बोधनका प्रयोग किया गया है। उसका तात्पर्य अर्थ वस्तुओंको देनेवाले ऐसा होता है। और आर्तिहन् इस सम्बोधनका अर्थ अनिष्ट वस्तुओंको दूरकरने वाले ऐसा होता है। अर्थात् इष्ट वस्तु प्राप्त करनेके लिये अनिष्ट वस्तु दूर करनेके लिये अन्य किसीका आश्रय ग्रहण न करके केवल भगवानका अथवा भगवानके चरणकमलका आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

अथवा आपका जो चरणारविन्द लोकमें पाँच प्रकारका उपकार करता है वह चरण हमारे ऊपर पाँच नहीं; किन्तु एक ही उपकार करें, ऐसा गोपीजन भगवानसे प्रार्थना करती हैं। भगवानका चरणाविन्द जगतमें पाँच प्रकारका उपकार करता है (१) लौकिक कामका खंडन करना, (२) ऐश्वर्यका दान करना, (३) शरणागतोंकी इच्छाको पूर्ण करना, (४) अलंकरण-शोभा देनेवाला, (५) दुःख दूर करनेवाला। इन पाँच उपकारके स्थानमें एक ही उपकार अर्थात्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हमारे हृदयके तापको दूर करनेवाला उपकार हमारे ऊपर आपके चरणकमल स्थापित कर करें, ऐसी गोपीजनोंकी प्रार्थना है। इस प्रकार द्वितीय अर्थ करनेमें गोपीजन अपने हृदयके तापको दूर करनेकी प्रार्थना करती हैं। अपने इच्छित पदार्थको दान करनेकी प्रार्थना करती हैं।

जो प्रणत है अर्थात् अनन्यभावसे भगवानकी शरण जाते हैं उनको भगवानका श्रीमुख कामका दान करता है। और यही बात प्रथम बारहवें श्लोकमें 'मनसि नः स्मरम् वीर 'यच्छसि' इस प्रकार कही गयी है। इसलिये वहांपर भोगकी प्रार्थना सिद्ध हो गयी है इसलिये इस श्लोकमें 'प्रणतकामदम्' इस पदका अन्य प्रकारसे अर्थ करनेकी आवश्यकता है। प्रणत अर्थात् अत्यन्त नम्र। ऐसे अतिनम्र भक्तोंमें भगवानका चरणकमल कामका दान—खण्डन करते हैं। इस श्लोकका इस प्रकार जब अर्थ करते हैं तब सम्पूर्ण श्लोकका अन्वय इस प्रकार करना चाहिये। इस श्लोकके पूर्वार्द्धमें जो चार विशेषण दिये गये हैं उन विशेषणवाले और पाँच प्रकारके उपकार करनेवाले आपके चरणकमल हमारे तापको निवारण करनेके लिये आप हमारे स्तनोंके ऊपर उन्हें पधरावें।)

अब 'पद्मजार्चितम्' का अन्य प्रकारसे अर्थ किया जाता है। पद्मजा अर्थात् लक्ष्मी। ब्रह्माने ऐश्वर्यके लिये भगवानके चरणकमलकी सेवा की अथवा लक्ष्मीजीने कामके लिये भगवानके चरणकमलकी सेवा की अथवा पद्मज अर्थात् नख। पद्म अर्थात् भगवानके चरणरूपी कमल और उसमें उत्पन्न होनेवाले पद्मज अर्थात् नख। इन नखोंसे भगवानका चरणकमल अर्चित अर्थात् सेवित है। (जगतमें नख पांवके साथ संयुक्त है इसलिये वह संयोगद्रव्य कहा जाता है। और पाँवके साथ नखका सम्बन्ध अनित्य होने से नख पांवसे पृथक् हो सकते हैं; किन्तु भगवानके नख सच्चिदानन्द रूप होनेके कारण स्वरूपात्मक हैं। इसलिये भगवानके नखोंको संयोगी द्रव्य नहीं कह सकते। अर्थात् भगवानके नख भगवानके चरणकमलसे पृथक् नहीं हो सकते। इस प्रकारकी वस्तुस्थिति होनेपर भी इस श्लोकके उच्चारण करनेवाली गोपीजनोंको अभी भगवानके चरणकमलके सम्बन्धके लिये इतनी आर्ति है कि नखादि जो भगवानके चरण-कमलके सम्बन्ध वाला पदार्थ है वहीं भगवानके चरणकमलका सम्बन्ध प्राप्त करनेमें हमारे लिये पूर्ण साधन हैं। ऐसा वे गोपीजन मानती हैं अर्थात् नख भगवानके चरणकमलके जन्म प्राप्त कर सकते हैं इसलिये वे नख ही हमारे लिये पूर्ण साधन है। इस कारणसे गोपीजनोंने भगवानके चरण कमलका 'पद्मजार्चितम्' इस प्रकार वर्णन किया है।) यदि इस प्रकार न माना जाय तो वे नख भगवानके चरणकमलमें भला किस प्रकार जन्म प्राप्त कर सकते हैं? अथवा भगवानका चरणकमल नखके सम है अर्थात् भगवानके चरणकमलकी अति शोभा भी नखसे ही है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसलिये भगवानका चरणकमल मानो नखोंके द्वारा अर्चित हुआ है। भगवानके चरणकमलमें स्थित ध्वजादि चिह्न भी इस प्रकारके ही हैं, ऐसा समझना। अर्थात् ध्वजादि चिह्न भी भगवानके चरणकमलका सम्बन्ध प्राप्त करनेमें पूर्ण साधन है। इसलिये भगवानका चरणकमल उन चिह्नोंके द्वारा अर्चित हुआ है।

धरणि अर्थात पृथ्वी। यह धरणी भी स्त्री है जिस स्त्रीने अलंकार धारण न किया हो उसका भोग हो नहीं सकता, इसलिये उस धरणीके ऊपर भगवानने अपने चरणकमल स्थापित करके धरणीको अलंकृत किया। इस प्रकार भगवानका चरणकमल धरणीके अलंकार रूप है। भगवानका चरणकमल भगवानसे भी अधिक है; क्योंकि भगवानके चरणकमलका दुःखके अवसर पर ध्यान करनेसे ही वह चरणकमल दुःख दूर करता है।

'प्रणतकामदम्' इस पदके द्वारा लौकिक कामका खण्डन, 'पद्मजार्चितम्' इस पदके द्वारा ब्रह्माको ऐश्वर्यका और लक्ष्मीजीको कामका दान, 'धरणिमण्डनम्' इस पदके द्वारा पृथ्वीको अलंकृत करना और 'ध्येयमापदि' इस पदके द्वारा दुःखको दूर करना इस प्रकार चार पदोंके द्वारा भगवानके चरणकमलके पाँच प्रकारके उपकारका वर्णन किया गया है। जिस प्रकार आप भगवानका चरणकमल सबके अर्थात् प्रणत आदिके ऊपर सर्व उपकार करता हैं, उस प्रकार हमारे ऊपर भी आपका चरणकमल हमारे हृदयके तापको दूर करके उपकार करे। इस रीतिसे ये गोपीजन भगवानसे प्रार्थना करती हैं। इस रीतिसे समस्त सुरत बंधोंका आक्षेपसे वर्णन किया गया है। 'प्रणतकामदम्' इस पदके द्वारा बाह्य सुरतबन्ध 'पद्मजार्चितम्' इस पदमें पद्मज द्वारा विपरीत बन्ध और पद्मजादिद्वारा तिर्यक् बन्ध धरणि पर पद द्वारा समबन्ध और ध्येय पद द्वारा अन्तर्बंध इस प्रकार सुरतबन्धके पाँच प्रकारके आक्षेपसे वर्णन किया गया है॥ १३॥

तत्पश्चात् अन्यपूर्वा राजस राजसी गोपीजनकी अपेक्षा उत्तम अन्य पूर्वा राजस सात्विकी गोपीजन 'सुरतवर्द्धनम्' इस श्लोकमें भगवानकी प्रार्थना करती हैं।

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥१४॥

भावार्थ—हे वीर! सुरतकी वृद्धि करनेवाले, शोकको नाश करनेवाले, स्वरित वेणु द्वारा चुम्बित और अन्य रागोंको विस्मरण करानेवाला आपका अधरामृत हमको अनधिकारिणियोंको दान करें॥ १४॥

श्रीसुबोधिनीजो—आपका अधरामृत हमें दान करें, इस प्रकार यह अन्यपूर्वा राजस सात्विकी गोपीजन भगवानसे प्रार्थना करती हैं। इस श्लोकमें भी पूर्व श्लोकके समान भगवानका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधरामृत गुणप्रद है। अष्टम श्लोकमें वर्णित अधरामृत दोष दूर करनेवाला है और इस श्लोकमें वर्णित अधरामृत गुणप्रद है, इसलिये इस श्लोकमें अष्टम श्लोकके अधरामृतकी पुनरुक्ति नहीं है। इस अधरामृतमें चार गुणोंके वर्णन करनेकी इच्छा है; क्योंकि यहाँ पर ज्ञान और वैराग्यका उपयोग नहीं है। इसलिये इस श्लोकमें अधरामृतके ऐश्वर्यादि चार गुणोंका वर्णन किया गया है। अधरामृतके ऐश्वर्य गुणका वर्णन करते हुए गोपीजन कहती हैं कि 'सुरतवर्धनम् ।' जिस समय गोपिकाओंमें स्थित परिच्छिन्न कामका भगवानके अपरिच्छिन्न स्वरूपके साथ संयोग होता है, उस समय वह परिच्छिन्न काम क्लिष्ट होता है।। जिस प्रकार आयुर्वेदीय रसौषधियाँ क्षुधाको जागृत करती हैं, उस प्रकार भगवानका यह अधर रस कामको जागृत करता है। पुनः भगवानका यह अधररस कामका केवल पोषण ही नहीं करता; किन्तु अन्तःकरणके समस्त दोषोंका निवारण करता है। इसलिये भगवानका अधरामृत शोकनाशक है ऐसा वर्णन किया गया है। और उस प्रकार अधरामृत ज्ञानरूप और वैराग्यरूप है, ऐसा निरूपण किया गया है। अथवा 'सुरतवर्धनम्' इस पदके द्वारा अधरामृतके ऐश्वर्य गुणका और 'शोकनाशनम्' इस पदके द्वारा धर्मगुणका वर्णन किया गया है।

अधरामृतके यशरूपी गुणका वर्णन करती हुई कहती हैं कि 'स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।' स्वरित अर्थात् नाद युक्त जो वेणु उनके द्वारा भगवानका अधरामृत भली भांति चुम्बित हुआ है। क्योंकि नाद जानने वाले ही यश का कीर्तन करते हैं। वेणु जो भगवानके परम भक्त हैं, इसलिये उसने भी भगवानके अमृत रसका चुम्बन ही किया; किन्तु पान नहीं किया अर्थात् परम भक्त नाद युक्त वेणु अधरामृतका सुन्दर चुम्बन करके अधरामृतके यशका गान करती है।

अधरामृतके श्रीरूपी गुणका वर्णन करती हुई गोपीजन कहती हैं कि 'इतरराग-विस्मारणम् ।' इस पदके द्वारा अधरामृतके श्रीरूपी गुणका वर्णन किया गया है; क्योंकि श्री अर्थात् लक्ष्मी सबका विस्मरण कराती हैं। तदनुसार भगवानका अधरामृत अन्य समस्त रागोंका विस्मरण कराता है।

भगवानका अधरामृत स्वयं पुरुषार्थरूप है और उसमें 'सुरतवर्धनम्' प्रभृत्ति चार विशेषणोंके द्वारा, प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल इन चारोंका निरूपण किया गया है। उसमें 'इतररागविस्मारणम्' इस विशेषणके द्वारा स्वतः पुरुषार्थरूप अधरामृतके प्रमेय बलका वर्णन किया गया है। उसके पूर्वके 'स्वरितवेणुना सुष्टुचुम्बितम्' इस विशेषणके द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधरामृतके प्रमाणबलका वर्णन किया गया है। 'शोकनाशनम्' इस पदके द्वारा अधरामृतके बलका वर्णन किया गया है। और 'सुरतवर्धम्' इस पदके द्वारा अधरामृतके साधन बलका वर्णन किया गया है। (कृष्णोपनिपद्में कहा गया है कि 'वंशस्तु भगवान् रुद्रः' वेणु रुद्र रूप है और 'वेदः शिवः शिवो वेदः' इस श्रुतिमें शिवको वेदरूप वर्णन किया गया है। अतएव वेणुनाद वेदरूप स्वतः प्रमाण होनेके कारण वेणुनाद भी स्वतः प्रमाण है। इस प्रकार स्वरित वेणु स्वतः प्रमाण वेदात्मक होनेके कारण प्रमाणरूप है। और उसके द्वारा इतररागविस्मारणरूप प्रमेय ज्ञान होता है। अर्थात् 'इतररागविस्मारणम्' यह पद प्रमेय बलका वर्णन करता है। स्वरित वेणुरूप प्रमाणसे इतरराग विस्मरणरूप जो प्रमेयज्ञान होता है उसका फल 'शोकनाशनम्' इसलिये 'शोकनाशनम्' यह पद फलके बलका वर्णन करता है। इस शोकनाशन रूपी फलको सिद्ध करनेके लिये साधनकी आवश्यकता रहती है और वह साधन 'सुरतवर्धनम्' इस पदके द्वारा कहा गया है। इस प्रकार अधरामृत स्वतः पुरुषार्थरूप है, और चार प्रकारका पुरुषार्थ देने-वाला है। भगवानका अधरामृत चार प्रकारके पुरुषार्थको देनेवाला है ऐसा 'सुरतवर्धनम्' इत्यादि चार विशेषण सूचित करते हैं। 'सुरतवर्धनम्' कामका, 'शोकनाशनम्' मोक्षका 'स्वरित वेणुनासुष्ठुचुम्बितम्' धर्मका और 'इतररागविस्मारणम्' अर्थका निरूपण करता है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंका यहाँ पर वर्णन किया गया है।

हम केवल 'नृ' हैं अर्थात् अनधिकारी हैं। अथवा समस्त पुरुषार्थ हमारे लिये दुर्लभ है, इसलिये यद्यपि आपका स्वतः पुरुषार्थरूप चार गुणवाला अधरामृत हमें देने योग्य नहीं है, तथापि आपके वितरण अर्थात् दानगुणके कारण उस अधरामृतका दान हमारे लिये कर सकते हैं, इस हेतुसे गोपीजनोंने वितर अर्थात् दान करें इस प्रकार भगवानसे प्रार्थना की। (अनधिकारी निःसाधन जीवोंको भी भगवान् अपनेमें :स्थित वितरण—दान गुणसे पुरुषार्थ देते हैं। इसलिये वितरण धर्म भगवानके अधिक उत्कर्षका सूचन करता है।)

भगवानको 'वीर' इस प्रकारसे जो सम्बोधन किया गया है, उसका भाव यह है कि भगवानका शौर्य अन्य प्रकारसे सम्भवित नहीं है। अर्थात् आप अपने अधरामृतका हमें दान करेंगे तो ही आपका शौर्य स्पष्ट होगा अन्यथा नहीं ॥ १४ ॥

इस प्रकार बारह तेरह और चौदह इन तीन श्लोकोंमें अन्यपूर्वा राजस गोपीजनोंने तामस, राजस और सात्विक इन तीन प्रकारका वर्णन करके अब १५-१६ और १७ इन श्लोकोंके भीतर अन्यपूर्वा तामस गोपीजनोंका सात्विक, तामस और राजस इन तीन प्रकारका वर्णन किया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाता है। देवकी निन्दा करनेवाली गोपीजन सात्विक तामस हैं। भगवानकी निन्दा करनेवाली गोपीजन तामस तामस हैं और अपनी निन्दा करनेवाली गोपीजन राजस तामस हैं। अब 'अटति' यह श्लोक का अन्य पूर्वा तामस सात्विक गोपीजन उच्चार करती हैं—

अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटियुगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिल कुन्तलं श्रीमुखं च ते जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥१५॥

भावार्थ—आप जिस समय दिवसमें बनमें पधारते हैं, उस समय आपके दर्शन न होनेसे हमें एक क्षण भी युगके समान मालूम होता है। हम जिस समय वक्र केशवाले श्रीमुखका दर्शन करती हैं उस समय नेत्रोंके पलक बनानेवाले ब्रह्मा हमें जड़ मालूम पड़ता है॥ १५॥

श्रीसुबोधिनीजी—आप जिस समय दिनमें वनमें परिभ्रमण करते हैं, उस समय एक पल भी हमें युगके समान मालूम पड़ता है। एक पल युगके समान मालूम होता है, इसका कारण प्रदर्शित करती हुई गोपीजन कहती हैं कि 'त्वामपश्यताम्' आपके दर्शन करती हैं तब आपके घुंवराले केशयुक्त श्रीमुखके दर्शन होनेपर हमें ऐसा मालूम होता है कि हमारे नेत्र पर पलक बनानेवाले ब्रह्मा जड़ हैं। अर्थात् हम जिस समय आपके श्रीमुखका दर्शन करती हैं, तब हमारे नेत्रके बीचमें प्रतिबन्ध करनेसे आपका विरह होता है इस कारण नेत्रकी पलकें बनानेवाला ब्रह्मा हमें जड़ जैसा मालूम होता है। जिस प्रकार देवगण अलौकिक द्रष्टा होनेके कारण ब्रह्मा उनके नेत्रपर पलकें नहीं बनाते, वैसे हमारी भी नेत्रपर पलकें बनाना उचित नहीं है, क्योंकि देवोंकी अपेक्षा हम अधिक अलौकिक स्वरूपकी द्रष्टा हैं। इसलिये ब्रह्माने हमारी आंखोंपर जो पलकें बनायी हैं वह अनुचित है, इसलिये हम कहती हैं कि वह जड़ है। यथार्थमें देवगण दीर्घकाल पर्यन्त जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार हम भी दीर्घकाल पर्यन्त जीवन धारण करती हैं, क्योंकि 'त्रुटिर्युगायते' एक पल भी युगके समान होता है। त्रुटि शब्द पुलिङ्ग तथा नपुंसक लिङ्ग है। यदि आपका वन पधारना सार्थक होता हो, तब तो हमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं, किन्तु दिनमें ही आप परिभ्रमण करते हैं और वनमें किसी प्रकार का पुरुषार्थ नहीं है। हमारा घरसे बाहर जाना सम्भावित नहीं है। (दिनमें आप प्रयोजनके विना वनमें परिभ्रमण करते हैं, उस समय हमें आपके दर्शन नहीं होते और हम घरके बाहर जा नहीं सकतीं; इसलिये एक पल क्षण भी हमें युगके समान बड़ा मालूम होता है। सायंकालमें हमें आपके श्रीमुखके दर्शन होते हैं। इस प्रकार हम अलौकिक पदार्थके दर्शन करनेवाली हैं और दीर्घकाल पर्यन्त जीवित रहनेवाली हैं इसलिये) इसप्रकार भगवानने तो हमें देवोंके समान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बनाया है; किन्तु सायंकालमें आपके श्रीमुखके दर्शन करनेके समय हमारे नेत्रकी पलकें दर्शनमें अन्तराय करती हैं। अतएव हमारे नेत्रोंकी पलकें बनानेवाला ब्रह्मा मूर्ख है। (इस श्लोकमें ब्रह्मदेवकी निन्दा करनेसे इस श्लोकका उच्चार करनेवाली श्रीगोपीजन तामस सात्विक हैं) ॥ १५ ॥

अन्यपूर्वा तामस सात्विक गोपीजनसे निम्न कोटिके अन्यपूर्वा तामस तामस गोपीजन 'पतिसुतान्वय' इत्यादि श्लोकमें भगवानकी निन्दा करती हैं।

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलंघ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥

भावार्थ—पति, पुत्र, वंश, भ्राता, बान्धव इन सबका उलंघन करके हे अच्युत ! गतिको जाननेवाली ऐसी हम गतिके जाननेवाले आपके समीप आयी हैं। आप गति जाननेवालोंके उच्च गायनसे मोहित ऐसी स्त्रियोंका हे कितव ! हे कपटी रात्रिमें कौन त्याग करे ?

श्रीसुबोधिनीजी—हे अच्युत ! स्वतः कामनिवृत्तिके भयसे रहित। (जिस समय भगवानके अतिरिक्त अन्य किसीका काम निवृत्त हो जाता है, उस समय वह दूसरा स्वयं ही लीलामेंसे निवृत्त हो जाता है। किन्तु भगवान् स्वयं अपनी लीलामेंसे किसी भी समय निवृत्ति नहीं होते; क्योंकि उनका अपना काम निवृत्त नहीं होता।) पति, पुत्र, अन्वय अर्थात् वंश, भ्राता, वन्धु-बान्धव अर्थात् सगे सम्बन्धी इन सबका उल्लंघन सर्वथा नहीं हो सकता, तथापि उनका भी अति उल्लंघन करके हम आपके समीप आयी हैं। आप सबकी गतिको जानते हैं; इसलिये आप गतिविद् हैं। क्योंकि अन्य जितनी गति करते हैं उतनी गति आप ही प्रदान करते हैं। अथवा हम गतिविद् अर्थात् गतिको जाननेवाली हैं, क्योंकि पति प्रभृतिका भजन और भगवानका भजन इन दो प्रकारके भजनोंका तारतम्य हम जानती हैं।

पुनः आपके उच्च गानसे हमें मोह हुआ (आप गति जाननेवाले हैं और हम पति प्रभृतिके भजन और आपके भजन इन दोनोंकी तारतम्यतारूप गतिको जाननेवाली हैं। इसलिये गति ज्ञानके कारण और आपके उच्च गानसे प्राप्त मोहके कारण हम आपके पास आयी हैं।) इसलिये हमारेमें मोह उत्पन्न करके हमें यहाँ बुलाकर पति प्रभृतिसे और आपकी तरफसे इन दोनों ओरसे भ्रंश करनेके लिये अरण्यमें रात्रिके समयमें हम स्त्रियोंका आपके सिवाय अन्य कौन त्याग करे ? सदैव स्त्रियां त्याग करने योग्य नहीं हैं। उनमें भी विशेषरूपसे वनमें तथा विशेषरूपसे रात्रिमें। (भगवान् गोपीजनोंका अरण्यमें रात्रिवेलामें त्याग करते हैं, इसलिये वे उन्हें 'कितव' अर्थात् कपटी कहती हैं, क्योंकि कपटीलोग अरण्यमें ठग करके त्याग कर देते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कितव इस सम्बोधनका दूसरा तात्पर्य ऐसा प्रदर्शित करतीं हुई कहती हैं कि) अथवा जिस वस्तुके लिये आपने हमें यहाँ बुलाया वह वस्तु हमें बिना दिये हमारा त्याग करते हैं, इस अभिप्रायसे गोपीजन भगवानको 'कितव' इस प्रकार सम्बोधन करती हैं।

अथवा मूल श्लोकमें 'कितवयोषितः' ऐसा समस्त पद लेना। हम कितवोंके कपटी गोपोंके केवल सम्बन्धवाले हैं। हम उनकी स्त्रियां-पत्नियां नहीं हैं। इसलिये हमारा उनमें प्रवेश नहीं हो सकता है। (गोपीजन भगवानको कितव न कहकर अपने पतियोंको कितव कहती हैं और अपनेको निजको 'कितवयोषितः' कहती हैं, जिसका तात्पर्य इस प्रकार है। गोपीजन कहती हैं कि कितव-गोपोंके साथ केवल हमारा सम्बन्ध ही है हम उनकी पत्नियां नहीं हैं। उन्होंने हमारा भोग नहीं किया है; क्योंकि हमारा भोग केवल भगवान् ही कर सकते हैं। गोपोंको तो केवल अभिमान ही है कि हम गोपियोंके मालिक हैं। जिस प्रकार रासके समय गोपीजन भगवानके पास थीं, तथापि योगमायाके मोहसे गोप मानने लगे कि हमारी स्त्रियां हमारे पास ही हैं। इस प्रकार सदैव गोपोंको योगमायाजनित मोहके कारण केवल अभिमान ही रहता है कि गोपियां हमारी पत्नी हैं और हम उनके पति हैं। किन्तु गोप गोपियोंका भोग नहीं करते। गोपीजनोंको पुत्रादि जो सन्तति हुई है वह तो अलौकिक प्रकारसे भगवानके द्वारा ही हुई है। गोप गोपियोंके पति नहीं हैं; तथापि गोपियां उन्हें पतिरूपमें जो स्वीकार करती हैं वह इसके पोषणके लिये ही। क्योंकि रस अन्यकी स्त्रीमें ही सिद्ध होता है ऐसा वात्सायन मुनिका सिद्धान्त है अतएव वास्तविक रीतिसे गोपीजनोंका भोग करने योग्य एक भगवान् ही हैं, ऐसा सिद्धान्त है ॥ १६ ॥

अन्यपूर्वा तामसतामस गोपीजनकी अपेक्षा उत्तम अन्यपूर्वा तामसराजस गोपीजन 'रहसि' इस श्लोकमें अपनी निजकी निन्दा करती हैं।

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहं मुह्यते मनः ॥ १७ ॥

भावार्थ—कामको उद्दीपन करनेवाले आपका एकान्तका वार्तालाप, प्रेमपूर्वक कटाक्षयुक्त प्रहसित आपका श्रीमुख और श्रीके धामरूप आपका वक्षस्थल इन तीनोंके खूब दर्शन करके अत्यन्त स्पृहायुक्त हमारा मन वारम्वार मोहको प्राप्त होता है ॥१७॥

श्रीसुबोधिनीजी—हमारा मन अत्यन्त इच्छा युक्त है। और वह मोहको प्राप्त होता है। तीन गुण सहित तीन कारणोंके निमित्त हमारे मनको मोह होता है।

वाक्यं हास्यमुरश्चैव कामानन्दाधिकारिणः।

मधुरता, मनोहर वाक्य और विद्वानोंको आनन्द देनेवाला ये तीन गुणवाक्य हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इन तीन गुणोंवाला भगवानका वाक्य, हास्य युक्त मुख और वक्षस्थल ये तीनों मनको मोह प्राप्त करानेमें कारण हैं। अथवा वाक्य, हास्य और वक्षस्थल ये तीन मोहके कारण हैं। और उन प्रत्येक कारणोंमें एक गुण है। वाक्यका गुण 'हृच्छयोदयम्' कामको जागृत करनेवाला, हास्यका गुण 'प्रेमवीक्षणम्' प्रेमपूर्वक कटाक्षवाला और वक्षस्थलका गुण 'श्रियोधाम' श्रीका स्थान, इस प्रकार तीन कारणोंके सब मिलाकर तीन गुण हैं। बन्धादिका ज्ञान देनेसे वाक्य कामको जागृत करता है। हास्य आनन्द उत्पन्न करता है और लक्ष्मीका धाम होनेके कारण वक्षस्थल अधिकारियोंका बोध करता है।

'रहसि' अर्थात् एकान्तमें जो संवित—वाक्य अथवा पूर्ववत् ज्ञान, एकान्तमें ज्ञान, जिस वाक्यसे हों वह वाक्य 'रहसि संवित्' कहा जाता है। अर्थात् जिस समय वाक्यका निरूपण किया जाता है; उस समय जिस वाक्यमें मधुरता आदि गुणमय देखनेमें आते हैं उसी प्रकार उस वाक्यसे ऊत्पन्न होनेवाले ज्ञान भी ये गुणमय देखनेमें आते हैं, उसी प्रकार उस वाक्यसे उत्पन्न होनेवाले ज्ञानमें भी ये गुणत्रयमें देखनेमें आते हैं। अर्थात् ज्ञान भी पूर्ववत् वाक्यके सदृश है। 'हृच्छेय' अर्थात् कामका उदय जिससे हो वह वाक्य 'हृच्छयोदयं' है। हास्य युक्त मुख, जिसमें प्रेम पूर्वक कटाक्ष है। भगवानका महान् वक्षस्थल लक्ष्मीजीका धाम है।

अथवा भगवानका स्वरूप छः गुणवाला है ऐसा इस श्लोकमें कहा गया है। 'रहसि संविदो, हृच्छयोदयं, प्रहसिताननं' और 'प्रेमवीक्षणं' इन चारोंमे बहुव्रीहि समास है और वे भगवानके स्वरूपके विशेषण हैं। अवशिष्ट दो गुण 'बृहदुरः' और 'श्रियो धाम' हैं एकान्तमें संवित वाक्य हैं, जिनमेंसे ऐसे आपको देखकर कामका उदय है, जिनमेंसे हास्य युक्त मुख है। जिनका, प्रेमपूर्वक कटाक्ष है जिनका ऐसे आपको देखकर महान् वक्षस्थल और लक्ष्मीजीका धाम इन उभयको देखकर हमारा मन मोहको प्राप्त होता है। 'रहसिसंविदोमें' भगवानके वाक्यका कथन है। और भगवत् वाक्य स्पष्ट प्रमाणरूप ही हैं। 'हृच्छयोदयं' में प्रमेयबलका कथन किया है। क्योंकि भगवानके प्रमाणरूप शृङ्गार रसवाले वाक्योंकी कामना उदयका ही ज्ञान होता है। 'प्रहसिताननम्' में साधनका वर्णन है। क्योंकि ऐसे हास्य युक्त भगवानका श्रीमुख समस्त फलोंको सिद्ध कर सकता है। 'प्रेमवीक्षणम्' में फलका वर्णन है क्योंकि भगवान् प्रेमपूर्वक भक्तोंकी ओर देखें यही बात फलरूपमें सिद्ध करनेकी है। इस प्रकार चार विशेषणों-के द्वारा भगवानके स्वरूपमें प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल इन चार प्रकारके बलका वर्णन किया गया है। इस श्लोकके वक्ता गोपीजनोंके वक्षस्थल पर स्थिति करनेके लिये 'बृहदुरः'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस पदके द्वारा यशका निरूपण किया गया है। भगवानका वक्षस्थल महान् है और महान् वक्षस्थल यशका सूचन करता है यह शास्त्र कथन है। अर्थात् 'बृहदुरः' इस पदके द्वारा यशका वर्णन किया गया है और 'श्रियो धाम' इस पदके द्वारा श्रीका वर्णन किया गया है।

भगवानके हास्ययुक्त मुखका दर्शन करनेके साथ ही इन गोपीजनोंकी पूर्वस्थिति नष्ट हो गयी। गोपीजनोंको जो प्रथम मान रहा वह भगवानके हास्य युक्त मुखका दर्शन करनेसे चला गया। हास्य यह माया है। इसलिये वह माया और इनको भगवानके लिये परम उत्कण्ठा हुई इस पदके तथा 'प्रहसितानम्' इस पदके द्वारा गोपीजनोंका मान चला गया है) तत्पश्चात् 'हृच्छयोदयम्' इस पदके द्वारा कामका वर्णन किया गया है। और 'प्रेमविक्षणम्' इस पदके द्वारा वह काम स्थित किया गया ऐसा कहा गया है। तत्पश्चात् 'बृहदुरः श्रियोधाम' इन शब्दोंके द्वारा भगवानके महान् वक्षस्थलके ऊपर स्थिति करनेके लिये हमारी अर्थात् गोपीजनोंकी योग्यताके है। पुनः 'रहसि संविदं' इस प्रथम विशेषणके द्वारा एकान्तमें जो रस सम्बन्धी वाक्य उनसे हम गोपीजनोंको भोग करनेकी चतुरता है यह सिद्ध होता है। श्रीगोपीजनोंने इस प्रकार भगवानके प्रति निवेदन किया।

इस प्रकार हमें सब कुछ सिद्ध हो जायगा, इस विचारसे अति स्पृहायुक्त हमारा मन मोहको प्राप्त होता है। केवल मोहको प्राप्त होता है, किन्तु इष्ट पदार्थ प्राप्त न होनेसे वारम्वार मूर्च्छा प्राप्त होती है। इस प्रकार हम यथार्थमें जीवन धारण नहीं कर सकतीं और मृत्युको भी नहीं प्राप्त होतीं। अर्थात् जीवन और मरण इन उभयमेंसे एक भी हमें प्राप्त नहीं हो रहा है इसलिये धिक्कार है इस जीवनको! इस प्रकार गोपीजनोंके कथनका तात्पर्य है। इस श्लोकमें गोपीजनोंने अपनी निन्दा की है ॥ १७ ॥

अब इस समय पर्यन्त मनोरथ करनेवाली अनन्य पूर्वा तामस सात्विक गोपीजन 'व्रजवनौकसां' इस श्लोकमें कुछ प्रार्थना करती हैं—

व्रजवनौकसां व्यक्तिरंग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजांयन्निषूदनम् ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे अंग! आपकी व्यक्ति—आपका स्वरूप व्रजवासियोंके पापका नाश करनेवाला है। और अखिल विश्वके लिये मंगलरूप है। स्वजनके–श्रीगोपीजनोंके हृदयस्थ रोगोंका जिससे नाश हो ऐसे आपके स्वरूपकी स्पृहावाली हमें अपने स्वरूपका अल्प भी दान करें ॥ १८ ॥

श्रीसुबोधिनीजी—आपका यह स्वरूप व्रजवासियोंके 'व्रजिन' का अर्थात् पापका नाश करनेवाला है। और पुनः अखिल विश्वके लिये अत्यन्त मंगलरूप है अर्थात् आपका स्वरूप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशेष करके हमारे ही दोषका निवारण करनेवाला है, दूसरोंके लिये तो वह गुण देनेवाला है। इसलिये इस प्रकारके आपके आनन्दमय स्वरूपका अल्प भी हमारेमें स्थापन करें। भगवानको अपने स्वरूपका स्थापन हमारेमें ही करना चाहिये इसका कारण प्रकाशित करते हुए गोपीजन कहती हैं कि 'स्वत्स्पृहात्मनां' आपकी स्पृहावाले आपमें स्पृहायुक्त आत्मा अर्थात् अन्तःकरण है जिनका हम ऐसी गोपीजन हैं।

'मुझे क्या स्थापन करना' ? यदि भगवान् ऐसी शंका करें तो गोपीजन कहती हैं कि स्वजन हृद्रुजा जो स्वजनोंके अर्थात् गोपिकाओंके कामरूपी हृदयरोगोंका जो वस्तु सम्पूर्ण नाश करती है, उसका अर्थात् भगवानके स्वरूपका स्थापन हमारेमें करें। 'निषूदन' अर्थात् जिस वस्तुसे सम्पूर्ण नाश हो वह। कई एकोंके पाप नाश करनेवाले और कई एकोंको फल दान करनेवाले और ऐसे आप हमारे कामरूपी रोगका नाश करें, ऐसा इस श्लोकमें श्रीगोपीजन भगवानसे प्रार्थना करती हैं॥ १८॥

कोई राजस तामसी अनन्यपूर्वा गोपीजन खेदके साथ कहती हैं कि—

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथतेन किंस्वित् कुर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषा नः॥१९॥

भावार्थ—'हे प्रिय! हम अपने कठिन स्तनोंके ऊपर आपका जो सुन्दर चरण-कमल भयभीत होते होते धीरेसे पधराती हैं। उन कोमल चरणकमल द्वारा आप वनमें पर्यटन करते हैं। इसलिये आप ही जिनके जीवनरूप हैं ऐसी हम गोपियोंकी बुद्धिको भ्रम होता है कि आपके उन कोमल चरणकमलको कंकड़ इत्यादिसे दुःख तो नहीं होता होगा'! ॥ १९॥

श्रीसुबोधिनीजी—'सुजात' सुन्दर जो आपके 'चरणाम्बुरुह' अर्थात् चरणकमलको हम डरती डरती धीरेसे अपने स्तनोंके ऊपर पधराती हैं। भगवानके चरणारविन्द स्तनोंके ऊपर धीरे धीरेसे पधरानेका कारण प्रदर्शित करती हुई गोपीजन कहती हैं कि 'कर्कशेषु'। स्तन कर्कश अर्थात् कठिन है, इस कारण गोपीजन भगवानको प्रिय सम्बोधन देती हैं। इससे मालूम पड़ता है कि गोपीजन भगवानके सुन्दर चरणकमलको स्नेहसे अपने स्तनोंके ऊपर पधराती हैं। आपका चरण कमल सुजात है। अर्थात् विस्तारवाला, भली भाँतिसे प्रफुल्लित, शीतल, सुगन्धित और तापका नाशक है। इसलिये आपके सुन्दर चरणकमलको हम अपने स्तनोंके ऊपर पधराती हैं। भगवान् गोपीजनोंके प्रिय हैं, इस कारण गोपीजन भगवानके चरणकमलको अपने स्तनोंके ऊपर धृष्टता अर्थात् साहसके साथ पधराती हैं। हमारे दोषके कारण हमारा त्याग करके आप उन चरणकमलों द्वारा वनमें परिभ्रमण करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वयं दुःखित हुए विना कदापि दूसरेको दुःख दे सकें तब तो वह दूसरोंको कदापि दुःख दें, किन्तु स्वयं दुःखित होकर दूसरेको दुःख नहीं दिया करते। इसलिये हमें सन्देह है कि आपको दुःख होता है या नहीं 'स्वित्' यह पद उत्प्रेक्षा कल्पनाके अर्थमें प्रयुक्त है। क्या आपको दुःख नहीं होता? होता ही है। इस प्रकार हम कल्पना करती हैं। कूर्पसे अर्थात् कंकड़ोंसे आपको दुःख होता ही है। कूर्प शब्दका अर्थ विषम अर्थात् नोकदार कंकड़ होता है।

यदि नोकीले कंकड़ोंसे भगवानके कोमल चरणकमलको दुःख होता ही है, फिर दुःख होता होगा ऐसी कल्पना क्यों की गयी है? इसके उत्तरमें गोपीजन कहती हैं कि 'भ्रमति धीः' हमारी बुद्धि केवल परिभ्रमण करती है। आपको दुःख होता है ऐसा निश्चय हो जाने पर हमारी बुद्धि शान्त ही हो जाय। अर्थात् हमें मूर्च्छा प्राप्त हो जाय। (कंकड़ोंसे दुःख होता है यह बात प्रसिद्ध है इस कारण हमें ऐसा विदित होता है कि आपको—भगवानको दुःख होता है।) किन्तु वनमें आप पुनः पधारते हैं, यदि आपको वनमें दुःख होता तो आप पुनः वनमें न पधारते। इनसे हमें मालूम होता है कि आपको दुःख नहीं होता होगा। इस प्रकार आपको दुःख होता होगा या नहीं होता होगा, इस रीतिसे दो विरोधी ज्ञान होनेसे हमें सन्देह होता है। हमारी बुद्धि परिभ्रमण करती है उसका कारण प्रदर्शित करती हुई गोपीजन कहती हैं कि 'भवदायुषां'। आपकी लीलाके निमित्त ही जिनके आयुष्य—जीवन है ऐसी हम हैं। प्रथम "शील-तृणाङ्कुरैः" इस ग्यारहवें श्लोकमें भगवानका चरणकमल पत्थर तृण दर्भ इत्यादिके अंकुरोंसे क्लेश अर्थात् खेद प्राप्त होता है यह जानकर गोपीजनोंके मनमें जो वेदना होती है उसका वर्णन किया गया है। इस श्लोकमें गोपीजनोंकी मूर्च्छारूपी अन्तिम स्थितिका वर्णन किया गया है। क्योंकि उनकी बुद्धि भ्रमण करती है। ग्यारहवें श्लोकमें गोपीजनोंके मनकी व्यथाका वर्णन किया और इस श्लोकमें उनकी मूर्च्छाका वर्णन किया गया है इसलिये किसी प्रकारकी पुनरुक्ति नहीं है। मूर्च्छा यह नवम अवस्था है और उसके पश्चात् आगे दूसरी अवस्था न होनेके कारण वह अन्तिम अवस्था है। अथवा प्रथम अर्थात् पहले सत्ताइसवें अध्यायके अन्तमें खेदके द्वारा मनकी व्यथाका वर्णन किया गया और यहाँपर अट्ठाइसवें अध्यायमें मूर्च्छारूपी अन्तिम स्थितिका वर्णन किया गया है। इस प्रकार समस्त गोपीजनोंकी मूर्च्छा पर्यन्तकी स्थिति समझनी चाहिये।

(गोपीजनोंके भीतर भगवानने लीला सहित प्रवेश किया है। विरहावस्थामें गोपीजनोंकी स्थिति किसी समय भगवत्लीलामें होती है। और किसी समय भगवत् स्वरूपमें होती है। पुनः गोपीजनोंकी जब लीलामें स्थिति होती है तब वे प्रलाप अर्थात् प्रश्न करती हैं। प्रश्न अन्तरंग है,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अतएव प्रलापरूप प्रश्नके कथनसे सत्ताइसवें अध्यायमें प्रदर्शित रसासक्ति, हरिक्रिया और गर्वभाव इन तीनोंका वर्णन किया गया है ऐसा समझना; किन्तु जिस समय गोपीजनोंकी स्थिति भगवानके स्वरूपमें होती है उस समय इस अध्यायमें जो प्रदर्शित किया है तदनुसार गान होता है। इस रीतिसे विरहावस्थामें भगवानकी लीलामें प्रवेश करनेसे रसासक्ति, हरिक्रिया और गर्वभाव ये तीन और भगवानके स्वरूपमें प्रवेश करनेसे गान इस प्रकार सब मिलकर चार भावोंकी बारम्बार आवृत्ति हुआ करती है।

इस प्रकार साधन और परीक्षाके अन्त पर्यन्त श्रीगोपीजनके तापका स्वरूप वर्णन किया गया है। अर्थात् इस प्रकार भगवानको प्राप्त करनेके लिये भक्त जो साधन करता है उन साधनोंकी पराकाष्ठाका वर्णन इस अध्यायमें वर्णन किया गया है। और भगवानने भक्तोंके स्नेहकी जो परीक्षा की है, उसकी पराकाष्ठाका वर्णन यहाँ पर हुआ है ॥ १९ ॥

इति श्रीभागवतसुबोधिन्यां श्रीमल्लक्ष्मणभट्टात्मज श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचितायां दशमस्कन्धविवरणेऽष्टाविंशाध्यायविवरणम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीगोपीगीतम्

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षुतावकास्त्वयिधृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥१॥
शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषादृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥२॥
विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥३॥
नखलुगोपिकानन्दनोभगवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितोविश्वगुप्तये सखउदेयिवान्सात्वतां कुले ॥४॥
विरचिताभयं वृष्णिधुर्यते शरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नःश्रीकरग्रहम् ॥५॥
व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥६॥
प्रणतदेहिनां पापकर्षणं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणुकुचेषु नःकृन्धि हृच्छयम् ॥७॥
मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाप्याययस्व नः ॥८॥
तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥९॥
प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमंगलम् ।
रहसि संविदो या हृदि स्पृशः कुहकनोमनःक्षोभयन्ति हि ॥१०॥
चलसि यद्व्रजाच्चारयन्पशून्नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥११॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
धनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥१२॥
प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शंतमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३॥
सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥१४॥
अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड़उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥१५॥
पतिसुतान्वयभ्रातृबांधवानतिविलङ्घ्यतेन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितवयोषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥
रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥१७॥
व्रजजनौकसां व्यक्तिरंग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमंगलम् ।
त्यजमनाक्‌चनस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूनदम् ॥१८॥

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु ।
भीताः शनैः प्रियदधीमहि कर्कशेषु ॥
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित् ।
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥१९॥

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥
तासामविरभूत् शौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीकृष्णाय नमः

श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः

श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धान्तर्गत अष्टादशाध्यायस्थ

वेणुगीतम्

श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता श्रीसुबोधिनी व्याख्याका हिन्दी भाषान्तर

(कारिका) अष्टादशे गोपिकानामासक्तिर्वर्ण्यते स्फुटा।
वर्ण्यवर्णकभेदेन गोपानामपि सोच्यते ॥ १ ॥

भावार्थ—अठारहवें अध्यायमें श्रीगोपीजनोंकी आसक्तिका स्पष्ट रूपमें वर्णन किया जाता है। वर्णनकर्ता और वर्णन करनेकी वस्तुके भेदसे गोपोंकी आसक्तिका भी वर्णन किया जाता है।

विवेचन—श्रीवल्लभाचार्यचरणोंके द्वारा स्वीकृत क्रमानुसार दशमस्कन्धके १८ वें अध्यायमें श्रीवेणुगीतका प्रसङ्ग है। इस सम्पूर्ण प्रमेय प्रकरणमें आसक्तिका वर्णन है, इस कारण इस प्रकरणके अन्तिम सप्तमाध्यायमें श्रीगोपीजनोंकी आसक्तिका वर्णन स्पष्ट रूपसे किया गया है। प्रथमके १७ वें अध्यायानुसार सब जनोंका ताप दूर हुआ; किन्तु श्रीकृष्णमें जिनका चित्त आसक्त है ऐसे श्रीगोपीजनोंका ताप दूर नहीं हुआ। इस वाक्यमें और उससे भी प्रथम श्रीगोपीजनोंकी आसक्तिका सामान्य वर्णन आ गया है; तथापि इस अध्यायमें उनकी आसक्तिका विशेष निरूपण है। प्रथम भी आसक्ति रही ही; किन्तु उसको प्रदर्शित करनेवाला वर्णन नहीं किया था, परन्तु इस अध्यायमें उसका वर्णन भी है। अतएव प्रकरणकी तथा इस अध्यायके सामान्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्णन और विशेष भावरूप वर्णनकी सङ्गति है। वर्णनका विषय भगवच्चरित्र ही है। दिवसका चरित्र और रात्रिका चरित्र जिस प्रकार भिन्न है उसी प्रकार दिवसके चरित्रका वर्णन करनेवाले श्रीगोपीजन और रात्रिके चरित्रका वर्णन करनेवाले गोप भी भिन्न ही हैं।

श्रीगोपीजनोंका निरोध मुख्य होनेके कारण इस प्रकरणके ९ वें अध्यायमें गोपवर्गके लिये निरोधके दान होनेका वर्णन है। वह भी श्रीगोपीजनके निरोधार्थ ही है। अर्थात् गोपोंका निरोध भी गोपिकाओंके किये हुए वर्णनमें प्रयोजक होनेके कारण वह गोपिकाओंके लिये ही है, ऐसा सिद्ध होता है। बालक जिस प्रकार अपने सहज स्वभावसे जो देखा हो और जिसका अनुभव हुआ हो उसका वर्णन उत्साहसे सबके आगे करते हैं, इसी प्रकार गोप बालकपनसे सबके समक्ष भगवच्चरित्रका वर्णन नहीं करते, किन्तु प्रभुमें आसक्ति होनेके कारण उसका वर्णन करते हैं। और आसक्तिका यह स्वभाव ही है कि प्रभुके चरित्रका जो ज्ञान अपनेको सर्वस्वरूपमें हुआ हो उसका स्पष्ट वर्णन सबके समाने होता ही नहीं; किन्तु केवल अपने समान जिनकी आसक्ति हो उनके सन्मुख ही उसका वर्णन होता है।

जिस प्रकार गोप प्रभुमें आसक्त हैं उसी प्रकार श्रीगोपीजन भी प्रभुमें आसक्त हैं। इसलिये गोपगण अपने समान शीलवाली श्रीगोपीजनोंके प्रति ही अपने अपने घरोंमें निज सर्वस्वके रूपमें भगवच्चरित्रका सुन्दर वर्णन करते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस तरह दिनमें श्रीगोपीजन भगवानका गुणगान करती हैं, उसी तरह रात्रिमें गोपगण भी अपने समान स्वभाव वाली श्रीगोपीजनोंके आगे भगवानका गुणगान करते हैं। इससे गोपोंकी आसक्ति भी स्पष्ट प्रतीत होती है। प्रमेय प्रकरणके आरम्भमें भी यह बात बतलायी गयी थी, इसलिये अन्तमें अन्तरंगक्रीड़ाके लिये वनप्रवेशके प्रसंगमें भी "सगोगोपालकः" तथा "गोपवृन्दैः" आदि शब्दोंसे 'गोपवृन्द भी साथ हैं', इस बातका स्मण कराया गया है। यदि ऐसा न किया जाता तो जैसे कात्यायनीव्रत और वरदानके प्रसंगमें जब प्रभु पधारे, तब गोपोंको साथमें नहीं लिया था और गोपीजनोंकी कार्यसिद्धि हो जानेके बाद गोप पधारे थे; वैसे ही प्रभु अकेले ही यहाँ भी पधारते। सार यह है कि अन्तरंगक्रीड़ाके लिये वृन्दावनमें प्रवेश करनेके प्रसंगमें गोपोंको संग लिया है, उन गोपोंकी प्रभुके स्वरूपमें आसक्ति सिद्ध होती है। श्रीगोपीजन भगवच्चरित्रका वर्णन दिनमें आसक्तिपूर्वक करती हैं, यह बात इस अध्यायमें स्पष्ट है।

दिनमें समस्त गोपीजन श्रीगोकुलमें अपने घरोंमें रहती हैं, तथापि भगवान् वनमें जो जो लीला करते हैं उन सब लीलाओंको भगवद्भावके सामर्थ्यसे अपने हृदयमें स्मरण करती हैं और उनका गान करती हैं। इसी प्रकार समस्त गोप रात्रिकी भगवद्लीलाका अपनी अतिशय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आसक्तिके सामर्थ्यसे अपने हृदयमें अनुभव करते हैं और गान करते हैं। किन्तु भगवत्कृत रात्रि-लीला अतिगोप्य होनेके कारण गोपवर्ग द्वारा गान की हुई उस लीलाका वर्णन श्रीमद्भागवतमें शुकदेवजीने स्पष्टरूपमें नहीं किया है।

श्रीगोपीजनने दिनकी लीलाका गान किया, ऐसा जो कहा गया है, उस परसे गोपोंने रात्रिलीलाका गान किया, ऐसा कथन समझना चाहिये, "अन्ये तदनुरूपाणि" श्लोकमें गोपकृत गुणगानका सूचन हो जाता हैं। क्योंकि लीलागानका कारण आसक्ति गोप एवं गोपीजन दोनोंमें समान ही है। और जहाँ जहाँ आसक्ति हो वहाँ वहाँ गुणगान होता ही है ॥ १ ॥

प्रवेशबोधने तासामुद्बोधाय निरूपिते।
तद्गुणेषु प्रसक्ता हि तदासक्ता भवन्ति हि ॥ २ ॥

भावार्थ—उनके उद्बोधके लिये वनमें प्रवेश और उस बोधका निरूपण किया जाता है। भगवान्‌में आसक्त हों वे उनके गुणोंमें भी आसक्त रहते हैं ॥ २ ॥

विवेचन—वेणुगीतके इस आसक्तिके वर्णन प्रस्तावमें बीस श्लोक हैं, उनमेंसे प्रथम श्लोकमें वृन्दावनप्रवेशका वर्णन है और द्वितीय श्लोकमें प्रभुने जो वेणु कूजन किया उसका वर्णन है। ये उभय श्लोक गोपीजनकी आसक्तिके उद्बोधन अर्थात् जागृतिके लिये हैं। यद्यपि सत्रहवें अध्यायमें "गोपैस्तयोस्तदद्भुतम्" इस श्लोकमें गोपोंकी आसक्ति स्पष्ट कही है और इस अध्यायमें श्रीगोपीजनकी भगवद्गुणमात्रमें आसक्ति स्पष्ट कही है। तथापि कार्यसे कारणका अनुमान होता है। भगद्गुणमें आसक्ति यह कार्य है और भगवानमें आसक्ति यह कारण है। भगवान्‌में आसक्ति होने पर ही भगवद्गुणगानरूप कार्यमें आसक्ति संभव है। कारणके विना कार्य सम्भव नहीं। भगवान्‌के गुणासक्तिके कार्य स्फुट हैं, अतएव भगवान्‌में आसक्ति-कारण भी है ही; ऐसा कथन होता है। जो भगवान्‌में आसक्त हो वही भगवद्गुणमें भी आसक्त होता है। अतएव गुणमें आसक्ति होनेके कारण भगवदासक्त है; ऐसा स्पष्ट होता है ॥ २ ॥

आसक्तिः प्रेमपूर्वैव प्रेमापि हरिणा कृतम्।
उद्बोधकं च हरिणा कृतं नान्येन केनचित् ॥ ३ ॥

भावार्थ—आसक्ति प्रेमके पश्चात् ही होती है। प्रेम भी भगवत्कृत है और उद्बोध भी भगवान्‌के द्वारा किया हुआ है, अन्य कोई भी उद्बोधक नहीं होता ॥ ३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विवेचन—जहाँ जहाँ गुणमें आसक्ति हो वहाँ वहाँ गुणीमें भी आसक्ति हो ऐसा कोई नियम नहीं है। ऐसा समझकर भगवदासक्ति गुण सम्बन्धके कारण जो होती है वह कदापि गौण होगी ऐसा भी नहीं मानना चाहिये। क्योंकि प्रथम प्रेम होता है और तदनन्तर आसक्ति होती है। इस कारण भगवदासक्ति सर्वथा गौण नहीं है; किन्तु मुख्य है। आसक्तिके पूर्वमें प्रेम होना ही चाहिये। यदि प्रेम ही न हो तो "सगोगोपालकः" इस पदमें सखामण्डल साथमें है, ऐसा कहा गया है वह नहीं कहा जा सकता। इस लिये प्रेम प्रथम है और आसक्ति उसके पश्चात् है। वृन्दावनप्रवेशरूप प्रथम श्लोकमें इसी प्रेमका निरूपण है और वह प्रेम जब जागृत होता है तब उसमेंसे आसक्ति होती है। अतएव द्वितीय श्लोकमें वेणुकूजनरूप उद्बोधनका निरूपण किया है। यदि प्रेम लौकिक हो तो कोकिलादिके कूजनसे भी ऐसे प्रेमका उद्बोधन होय, किन्तु अलौकिक भगवद्विषयक प्रेमका उद्बोधन उससे हो नहीं सकता। अतः उसके उद्बोधनके लिये अलौकिक भगवान्‌के किये हुए प्रवेश और वेणुकूजनका वर्णन किया। वह वेणुकूजन भी अन्य कोइ भी करे तो उससे अलौकिक प्रेमका उद्बोधन नहीं हो सकता इस कारण प्रभुने स्वयं ही वेणुकूजन किया। वेणुकूजनसे प्रभुने स्वयं उद्बोधन किया और प्रेम जीवकृत श्रवणादि साधनोंसे प्रथम सिद्ध हो गया। ऐसा भी नहीं, प्रेम आसक्तिकी पूर्वावस्था है और वह प्रेम भी श्रीहरिने उत्पन्न किया।

प्रमाण प्रकरणकी लीला प्रकट करके प्रभुने अपने स्वरूपसें प्रेमका दान श्रीव्रजजनको स्वयं किया और प्रमेय प्रकरणकी लीला प्रकट करके आसक्तिका दान भी आपने ही किया। वृन्दावनमें गौ और गोपाल सहित प्रवेश किया और वेणुकूजन किया जो हरिने स्वयं केवल प्रेम आसक्ति और वेणुकूजन इतना ही किया है। ऐसा भी नहीं है, किन्तु वहाँ पर समस्त सामग्री भगवान् प्रगट करते हैं; क्योंकि अङ्गीकारमात्रसे भगवान् सब कुछ सिद्ध करते हैं। साधनकी सम्पत्ति भी स्वयं करके फलदान करते हैं। अतएव पुष्टिमार्गमें साधन भी प्रभु ही हैं। जिनको वेदके प्रमाणकी आकांचा हो। "यमेवैष वृणुते" अर्थात् भगवान् जिनका वरण करते हैं वही भगवान्‌को प्राप्त करता है। इत्यादि श्रुतिरूपाके योग्य उन्हें सम्पूर्ण संतोष देते हैं। श्रीगोपीजनके ऊपर भगवानका प्रेम ही न रहता तो आप वृन्दावनमें प्रवेश ही न करते। अथवा प्रेम करनेके पश्चात् उद्बोधन न करते। किन्तु ये दोनों किया अतः परिपूर्ण उनका प्रेम है ऐसा जाननेके पश्चात् ही श्रीगोपीजनका प्रेम उद्बुद्ध अर्थात् जागृत हुआ और इसी रीतिसे उद्बुद्ध प्रेम मुख्य है और अन्य साधन साध्य प्रेम गौण है। ऐसा इन दो श्लोकों द्वारा सूचित करके आगे आने वाला सर्व वर्णन भगवान् द्वारा दान की हुई आसक्तिपूर्वक ही हुआ है। ऐसा श्रीशुकदेवजीने स्पष्ट किया है॥ ३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आसक्त्या वर्णनं तस्माद् विद्यान्ते वर्ण्यते स्फुटम्
कालाधिको हरिश्चात्र पुरुषोत्तम एव च ॥ ४ ॥
त्रयोदशविधा लीला तत उक्ता पृथक् पृथक्॥ ४½॥

भावार्थ—अतएव पञ्चपर्वा विद्याके अन्तमें आसक्तिसे उसका स्पष्ट वर्णन किया जाता है। यहाँ पर हरि कालसे अधिक है, पुरुषोत्तम ही है, इसलिये तेरह प्रकारकी लीला भिन्न भिन्न कही गयी है॥ ४½ ॥

विवेचन—'कुसुमितवनराजि' इस श्लोकमें यद्यपि अन्य उद्बोधक साधन कहे गये हैं किन्तु वस्तुतः यहाँ पर सबका उद्बोधन भगवानने ही किया है। क्योंकि यह सर्व वर्णन भगवद्गुणगानमें आसक्ति पर्यन्तका अलौकिक दान हुआ हो तो भी जहाँ पर्यन्त भगवान् स्वयं विद्याका दान न करें वहाँ पर्यन्त प्रभुके स्वरूपका, गुणका और लीलाका ज्ञान नहीं हो सकता। "यमेवैष वृणुते" इस श्रुतिका यही तात्पर्य है। अतः श्रीगोपीजनने वर्णन करनेका उपक्रम किया, किंतु उनकी आसक्ति विद्यासहित नहीं थी, इस कारण वर्णनके उपक्रमके अन्तमें "तद् वर्णयितुमारब्धाः" इस श्लोकके अन्तमें "बर्हापीड़म् नटवरवपुः" इस श्लोकमें विद्याका अर्थात् ब्रह्मके स्वरूपज्ञानका सर्वपरिपरिकरसहित स्पष्ट वर्णन किया गया है।

प्रभुदत्त आसक्तिसे गानका आरम्भ हुआ तथापि स्मर—काम वेगके कारण मन विक्षिप्त हो गया। ज्ञान नहीं हो सका। अतएव अन्तमें प्रभुने स्वयं ही श्रीगोपीजनको विद्याका भी दान किया, उसका वर्णन "बर्हापीड़म्" श्लोकमें स्पष्ट है। सारांश यह है कि गुणगानमें प्रेम, आसक्ति और विद्या इन सबकी जो जो अपेक्षा है वह सब कुछ भगवदाधीन ही है। विद्या भी दो प्रकारकी है—अमूर्त और मूर्त अथात् अप्रकट और प्रकट। नादब्रह्मरूप अमूर्त विद्याका अन्तःकरणमें अनुभव कराते हुए उस विद्याके फलरूप स्वरूपका अनुभव भी प्रथम इस वेणुगीतमें गानद्वारा अन्तकरणमें ही कराया है। आगे चलकर रासोत्सवके प्रस्तावमें अपने लोककी—व्यापी वैकुण्ठकी बाह्य अनुभव करानेवाली मूर्तिमती विद्याके द्वारा उस विद्याके फलरूप स्वरूपानन्दके अनुभवका दान बाहरी अंगसंगद्वारा प्रभु करायेंगे। किन्तु यहाँपर वेणुगीतमें विद्या और उसका फल उभय अमूर्त है, मूर्तिमती विद्या और उसके फलका प्रसंग आगे फलप्रकरणमें कहा जायगा। सारांश यह है कि विद्या शब्दका प्रयोग जैसे उपासनके अर्थमें होता है, उसी तरह साक्षात्कारके अर्थमें भी हो सकता है। अथवा विद्याका अर्थ विद्याशक्ति ही होता है, विद्याके विना भगवत्प्राप्ति नहीं है यह "विद्ययामृतमश्नुते" अर्थात् विद्याके द्वारा अमृतका भोग कराते हैं; श्रुतिका यह मर्म है। अतएव श्रीव्रजजनमें भी यहाँपर विद्याका निरूपण किया है। इस अध्यायके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रारम्भसे पंचम श्लोक "बर्हापीड़म् नटवरवपुः" पर्यन्त वैराग्य, सांख्य, योग, तप और भक्ति इस प्रकार पञ्चपर्वा विद्याका प्रतिपादन है।

इस पञ्चपर्वा विद्याके दान होनेपर तुरन्त ही श्रीगोपीजनको भगवद्गुणवर्णानुरूप भगवत्-प्राप्ति सिद्ध हुई। गानका भी फलोन्मुख अर्थात् फलदान करनेको तत्पर उपक्रम हुआ। अतएव यह विद्या ब्रह्मविद्यासे भी अधिक है। ब्रह्मविद्याका भी फल है ऐसा निश्चय होता है। वस्तुतः लीलास्थ जीवकी विद्या भी अलौकिक है और श्रीगोपीजनको ही उस अलौकिक विद्याका दान हुआ है। इस विद्याके पाँच पर्व भी विलक्षण हैं। भगवान्के सिवाय अन्य समस्त पदार्थोंमेंसे अनुरागकी निवृत्ति यह यहाँपर वैराग्य है। पुरुषोत्तम रसात्मक हैं—ऐसा ज्ञान सांख्य है। चित्त-की भगवानमें तन्मयता—यह यहाँपर योग है। भगवानके विरहसे होनेवाला ताप—क्लेशका अनुभव—यह यहाँपर तप है। एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंकी आकांक्षा-रहित भगवदासक्ति—यह यहाँपर भक्ति है। इस पञ्चपर्वा पुष्टिमार्गी विद्याका दान श्रीव्रज सुन्दरियोंको हुआ है। इस विद्याका पंचम पर्व भगवदासक्तिरूप भक्तिका निरूपण इस अध्यायमें है। सार यह है कि श्रीगोपीजनको इस प्रकारकी भगवदासक्ति है यह अठारहवें वेणुगीत अध्यायका अर्थ है।

"बर्हापीड़ं नटवरवपुः" इस श्लोकमें जिस भगत्स्वरूपके अनुभवका वर्णन किया गया है, वह ब्रह्मभावके भी आगेकी अवस्था है। यह अवस्था भक्तिसे ही प्राप्त होती है। "भक्त्या मामभिजानाति" इस श्लोकमें जो भक्ति कही है उससे जो अभिज्ञात भगवानके स्वरूपका सब प्रकारसे ज्ञान है, वही इस श्लोकमें कहे गये भगवत्स्वरूपका अनुभव है।

श्रीगोपीजनको जो इस अनुभवका दान हुआ, वह "अक्षण्वतां फलमिदम्" इस श्लोकमें स्पष्ट होता है इसलिये इस अध्यायमें जो वर्णन है वह श्रीगोपीजनकी भगवदासक्तिको लेकर ही है; यह निश्चित है। वर्णन तो "अक्षण्वतां फलमिदम्" इस श्लोकमें पश्चात् ही आरम्भ होता है इसलिये यह आसक्तिपूर्वक है। केवल साधनरूप ही नहीं फलरूप भी है। इसीलिये वह पञ्चपर्वा विद्याके अन्तमें हुआ है ॥ ४१ ॥

यहाँतक इस अध्यायके आरम्भके छः श्लोकोंका स्वारस्य स्पष्ट किया गया है, आगे तेरह श्लोकोंमें श्रीगोपीजनसे किया गया भगवानके गुणोंका वर्ण है। फिर अन्तिम बीसवें श्लोकमें इस आसक्तिका प्रतिपादन करनेवाले प्रमेय प्रकरणका उपसंहार है। श्रीगोपीजन द्वारा गाये गये वेणुगीतके श्लोकोंकी संख्या तेरह होनेका भी विशेष रहस्य है। प्रवाही जीव द्वादशमासरूप कालकी उपासना करते हैं, मर्यादिक जीव बारह अंगवाले पुरुषकी उपासना करते हैं। उस काल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और पुरुष उभयसे उत्तम, जिनका गान श्रीगोपीजन करती हैं वे भगवान् त्रयोदश अंगवाले हैं। यह शुद्ध पुष्टिमार्गीय त्रयोदशांगयुक्त प्रभु नित्यलीलास्थ श्रीहरि हैं। क्षर और अक्षरसे उत्तम पुरुषोत्तम हैं, इन्द्रियधारियोंके लिये फल हैं। अर्थात् श्रीव्रजसीमन्तिनियाँ जिनका गान करती हैं, उन नित्यलीलास्थ पुरुषोत्तमके स्वरूप, गुण और लीलामें सर्वनित्य अथवा कालातीत है ऐसा सहज सिद्ध हो जाता है। इसी कारण यहाँपर भक्तिवाक्यमें कालसे अधिक हरिका और क्षर तथा अक्षरसे उत्तम पुरुषोत्तमका वर्णन होता है और उनकी तेरह प्रकारकी लीलाका भिन्न भिन्न श्लोकोंसे वर्णन किया है।

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाके लिये पिछले अध्यायके अन्तमें शरदऋतुका वर्णन किया है, तदनन्तर भगवानने लीलाके लिये वृन्दावनमें प्रवेश किया उसका वर्णन "इत्थं" इस श्लोकसे करते हैं :— (यहाँ से वेणुगीत का आरंभ होता है)

(मूलम्) इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना।
न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥१॥

भावार्थ—इस प्रकार शरदृऋतुके कारण अत्यन्त विमल जलवाले तथा अरविन्दवृन्दकी सुगन्धिसे भरपूर वृन्दावनमें गाय और गोपालोंको लेकर भगवान् श्रीकृष्णने प्रवेश किया ॥१॥

सुबोधिनीजी—पूर्व वर्णित शरदृऋतुके कारण विमल जलवाले वृन्दावनमें अच्युत भगवान् श्रीकृष्णने प्रवेश किया, ऐसा पूर्वका सम्बन्ध है। यहाँ भी पहलेके समान ही आधिदैविक शक्तियों-के साथ ही लीलाका वर्णन करना है, उसमें नायककी उत्कर्षताके लिये अच्युतपद रखा है, उसमें भी गायें अनुभव करानेवाली हैं और गोपाल उनके सेवक हैं। शक्तियोंकी निर्भयतामें ये देव साक्षी हैं। जल और स्थलके भेदसे रमण दो प्रकारका है अत्यन्त प्रगाढ़ रमणमें वायुकी अपेक्षा होती है तथा जलक्रीड़ामें निर्मलता और शीतलताका अभाव आवश्यक रहता है। अतएव शरदृऋतु इस पदसे निर्मलता तथा शीतलताका अभाव सूचित किया है, जहां शरदृऋतुके कारण स्वच्छ जल था वहां प्रवेश किया है। प्रधानरीतिसे कर्मका निर्देश नहीं किया है, श्लोकके अन्तर्गत इस प्रकारके 'वनमें' ऐसा प्रधानता कर्मका निर्देश नहीं किया है इसलिये क्रीड़ाके लिये जलमें भी प्रवेश किया यह अर्थ भी हो सकता है। पद्माकरोंकी सुन्दर तथा शीतलतासहित गन्धवालेको पद्माकर सुगन्धि कहते हैं, इस प्रकारका पवन जहाँ वह रहा था उस वनमें प्रवेश किया, सुगन्धि होनेसे ही वह पवन धीरे धीरे बह रहा था यह भी सूचित कर दिया गया है, क्रीड़ामें इतनी ही आवश्यकता अपेक्षित है। विशेषणके धर्मोंकी प्रधानताके कारण ही विशेष्यका निर्देश नहीं किया गया है।

इस श्लोकमें 'इत्थं शरत्स्वच्छजलम्' यह एक और 'पद्माकरसुगन्धिना वायुना वातम्' यह दूसरा इस प्रकार दो विशेषण सुस्पष्ट कहा है; किन्तु इन दोनों विशेषणोंके विशेष्य 'वन' को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्पष्ट शब्दोंमें नहीं कहा है उसमें कारण यह है कि वे विशेषण ही मुख्य हैं। स्वच्छ जल और शीतल मन्द सुगन्धयुक्त पवनवाले वनमें प्रवेश किया "न्यविशद्" इस पदसे ऐसा बोध होता है नि- नितराम् अर्थात् आधिदैविक भीतरके भाग तक प्रवेश किया ॥१॥

विवेचन—श्रीवेणुगीतके इस प्रथम श्लोकमें 'वृन्दावन' पदका प्रयोग नहीं किया है; तथापि गत अध्यायमें लीलाके स्थानरूपमें वनका वर्णन है एवं इस अध्यायके भी द्वितीय श्लोकमें 'कुसुमितवनराजि' इस पदमें वन शब्द भी है और पंचम श्लोकमें 'वृन्दारण्यं प्रविशत्' ऐसा स्पष्ट कहा गया है, अतएव प्रवेशका स्थल श्रीवृन्दावन ही है यह बात निश्चित है। भगवानकी शक्तियोंमें भी भगवानके समान अलौकिकता, नित्यता एवं धर्मत्व है, इस बातको प्रदर्शित करनेके लिये और भगवद्भोग्य श्रीगोपीजनोंकी अलौकिकता, नित्यता और सहज धर्मत्वयुक्त स्वरूपका जिनको भान नहीं है ऐसे अज्ञानियोंसे उनका स्वरूप गुप्त रखनेके लिये यहाँ पर 'शक्ति' पदका प्रयोग किया है। इस लीलामें नायक उत्कृष्ट है यह बतानेके लिये प्रभुके लिये 'अच्युत' पदका प्रयोग किया है। स्वरूपसे जिनकी कदापि च्युति अर्थात् स्खलन न हो उनका नाम अच्युत है। ऐसे उत्कृष्ट नायककी लीलामें गौएँ भी अनुभव करानेवाली हैं इससे भी नायककी निर्दोषता एवं उत्कर्षता सिद्ध होती है।

गऊके समान भगवद्भक्त ही इस लीलाके अनुभवकर्त्ता हैं। जिस प्रकार गऊ अनुभव करानेवाली हैं; उसी प्रकार गोपगण भी इस लीलामें सेवक हैं। शक्तियाँ अर्थात् श्रीगोपीजनकी निर्भयता सिद्ध करनेमें इन गोरूप सेवकोंका विनियोग किया गया है। ये गोप देव हैं। १६वें अध्यायमें 'आसन् सुविस्मिताः' इन पदोंके व्याख्यानमें ऐसा प्रतिपादन किया गया है कि उनकी इन्द्रियाँ निर्दोष हैं अतएव वे देव हैं। श्रीगोपीजनके साथकी भगवानकी लीलामें निर्भयता करानेवाले निर्दोष इन्द्रियवाले देवरूप गोप साक्षी हैं। इस साक्षित्वसे लीलाका दिव्यत्व भी सिद्ध हो जाता है। साक्षी स्वार्थसे अथवा निःस्वार्थसे फल भोगको समर्पण करनेवाला और फलभोगमें अधिकारानुसार वर्तन करनेवाला भी रहता है। ये सब गुण यहाँ पर अन्तरंग गोपवर्गमें हैं। इस कारण उपनिषदादिमें जिस प्रकार परमात्माको साक्षी कहा है उसी प्रकार यहाँपर गोपोंको साक्षी कहा है। श्रीप्रभुकी निर्दोष और पूर्ण गुणलीलामें रमण भी जल और स्थलके भेदसे दो प्रकारका है। जल अतिशय शीतल न हो और निर्मल हो तभी जलक्रीड़ा भी रसाल होती है। स्थलमें निर्भर—गाढ़ रमणमें पवनकी भी अपेक्षा रहती है। ऋतु शरद् है अतएव जल निर्मल है और अतिशय शीतल भी नहीं है। पवन-वायु सुगन्धित है अतएव गन्धभारसे वह मन्द-धीरे धीरे गति करनेवाला भी है। क्रीड़ामें शीतल, मन्द और सुगन्धयुक्त ऐसा तीन प्रकारका वायु और अधिक शीतल नहीं ऐसे स्वच्छ जलकी अपेक्षा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस श्लोकमें जलकी और वायुकी प्रधानता है अतः स्थल वृन्दावनका निर्देश नहीं किया है। नितराम् प्रवेश किया अर्थात् आधिदैविक पर्यन्त प्रवेश किया। जहाँ पर आकर सम्मिलित देवताएँ अपना अपना कार्य नेत्रभृकुटिके विलाससे करती हैं वहाँ पर्यन्त प्रवेश किया। गऊ और गोपालों सहित भगवानने निकुंज प्रदेश पर्यन्त प्रवेश किया। इस प्रकार परोक्ष रीतिसे दर्शानेके लिये यहां आधिदैविक पद का प्रयोग किया है और उसका संकेत 'नि' उपसर्गसे श्रीशुकदेवजीने किया है।

सुबोधिनीजी—प्रथम श्लोकमें श्रीकृष्णके वृन्दावनमें प्रवेश करनेका वर्णन किया, अब 'कुसुमितम्' इस श्लोकसे देवताओंके उद्बोधनके विषयमें कह रहे हैं—

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्ग द्विजकुलजुष्टसरः सरिन्महीध्रम्।
मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः सह पशुपालश्चुकूज वेणुम् ॥ २ ॥

भावार्थ—विकसित वनश्रेणियोंसे मत्त हो जानेवाले भ्रमर और पक्षियोंके समूहसे संसेवित सरोवर नदी और पर्वतमालाओंसे विभूषित वनमें प्रवेशकर गोपगण तथा श्रीबलदेवजीके साथ गायोंको चराते हुए मधुपति भगवान् श्रीकृष्णने मुरलीवादनका प्रारम्भ किया।

सुबोधिनीजी—गायोंको चराते हुए भगवान् मधुपतिने मुरलीवादन प्रारम्भ किया। वसन्तके अधिपति रसविशिष्ट श्रृङ्गारस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने धर्मकी अपेक्षा क्रिया और ज्ञानशक्तिके साथ देववृन्दके उद्बोधनके लिये वंशी बजाना प्रारम्भ किया। उद्बुद्ध देवगण सामग्रीके अभावमें रमणक्रिया नहीं कर सकते अतएव भगवान् मधुपति (सर्वसामग्री विशिष्ट) हैं ऐसा निरूपण किया है। तदनन्तर विभाव इत्यादिका भी निरूपण करते हैं कि कुसुमित वनश्रेणियोंसे मत्त बने हुए भ्रमर और पक्षियोंके भिन्न भिन्न प्रकारके समूहोंसे संसेवित नदी, सरोवर तथा पर्वतश्रेणियोंसे समलंकृत वनमें प्रवेश किया, इस प्रकारके वनको देखा, उसमें प्रविष्ट हुए और उसमें निवास करनेवाले तीन प्रकारके देवताओंको जागृत करनेके लिये केवल श्रृंगारके लिये ही वेणुनाद किया ॥ २ ॥

विवेचन—मधुपति पदमें मधुका अर्थ कोई-कोई टीकाकार यादव करते हैं; किन्तु इस अर्थमें कुछ भी स्वारस्य नहीं है अतएव मधुका अर्थ वसन्त ही करना चाहिये और वह श्रृंगारकी आत्मा रसरूप भगवानको अथवा रसवाले श्रृंगारात्माने अर्थात् वसन्तके अधिपतिने वेणुका कूजन किया। इस अर्थका स्वारस्य अनुभवमें लेना वह रस उचित है। उस रस अथवा रसवाले श्रृंगार रसात्मा हैं इसी कारण मधुके अर्थात् वसन्तके आप अधिपति हैं। लोकसिद्ध कोई कार्य न हो तो वृन्दावनमें पधारना और वहाँ पर दीर्घकाल पर्यन्त स्थिति करना यह लोक-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विरुद्ध कहा जायगा और जो लीला करनी है उसका यदि लोकको ज्ञान हो जाय तो वह रस-विरुद्ध है, इस प्रकार लोकज्ञानका और रसविरोधका समाधान करके सर्व सिद्ध कर देनेका सामर्थ्य गोचारणरूप धर्ममें है; क्योंकि साक्षात् और परम्पराके भेदसे धर्म चतुर वर्गको अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भी सिद्ध करता है। गोचारणरूप धर्म करते-करते वसन्तके अधिपति भगवानने वेणुकूजन किया अतः साक्षात् और परम्परासे चतुर वर्गको सिद्ध करनेवाले भगवत् सम्बन्धी गोचारणरूप धर्मका आचरण करके लोक और रसके परस्पर सर्व-विरोधका समाधान करके धर्मादि चारों पुरुषार्थका सम्पादन कर दिया है। गोप क्रियाशक्तिरूप हैं; क्योंकि अन्तरंग कार्यके लिये प्रभुने उनमें क्रियाशक्ति स्थापित की है और ज्ञानशक्ति-रूप बलदेवजी प्रतिबन्धकी निवृत्ति के निमित्त हैं। यद्यपि क्रियाशक्तिका स्थापन भी बलदेवजीमें है तथापि अन्तरंगलीलामें बलदेवजीका उतना अधिकार न होनेसे यहाँ पर उनमें मात्र ज्ञान-शक्तिका ही स्थापन कहा है। गो-चारणरूप धर्ममें क्रियाशक्ति सहित पशुपाल गोपोंका और ज्ञान शक्तिसहित बलदेवजीका भी सहभाव सार्थक है। गो-चारणादि क्रियामें अन्तरंग कार्यके निमित्त गोपोंका उपयोग है और प्रतिबन्धक आसुर सम्पत्तिकी निवृत्तिपूर्वक भक्तोंके साथ स्वच्छन्द लीलाप्रसंगमें और भक्तरक्षामें बलदेवजीका उपयोग है। इस प्रकार भगवानकी क्रियाशक्तिवाले पशुपालक गोप और भगवानकी ज्ञानशक्तिवाले बलदेवजीके सहभावसे मधुपति भगवानकी 'यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः' इस श्रुतिमें कथित सर्व शक्तिमत्ता भी स्पष्ट हुई अर्थात् परब्रह्ममें क्रिड़ाके लिये क्रिया और ज्ञानशक्ति सर्वदा अपेक्षित है ऐसा स्पष्ट हुआ। यदि ऐसा न हो तो सर्वधर्मवाले सर्वशक्तिवाले सरस शृंगारात्मा मधुपति भगवानकी निर्धर्मकता और अकर्तृत्वादि विवर्तसे अर्थात् शुक्तिमें रजत दिखायी दे इस प्रकार भ्रमके अन्दर जगत् दिखायी दे उसको विवर्त कहते हैं यदि इस प्रकार विवर्तवादको स्वीकार किया जाय तो रसनिष्पत्तिमें विप्लव हो जाय।

सरोवरके, नदीके और पर्वतके निकटमें वास करनेवाले तीन प्रकारके देवता-वन-सुन्दरीके उद्बोधनके लिये मधुपति भगवानने अस्पष्ट वेणुनाद भी किया, इच्छित कार्यके लिये बोधकका स्थापन यही उद्बोधन है देवताओंका उद्बोध हो तो भी यदि रसरूप सामग्रीका नायकमें अभाव हो तो उद्भूति देवताकी भी वहाँ पर रति सिद्ध नहीं हो सकती है, इस अभावको दूर करनेके लिये भगवान्‌का नाम सरस शृंगारात्मा मधुपति इस प्रकार कहा गया है।

उस निमित्त जो वनराजि उससे मत्त हुए भ्रमर और भिन्न-भिन्न जातिके पक्षी अधिक देखनेमें आ रहे हैं, ऐसे सरोवर, नदियाँ और पर्वत हैं इस प्रकारके बनमें लीला करनेके निमित्त अवगाहन करके सरोवर, नदी और पर्वतमें स्थित तीन प्रकारकी वनसुन्दरियोंके उद्बोधनके लिये भगवान्‌ने केवल शृंगाररसके निमित्त ही वेणुकूजन किया यह सब निरूपण विभव आदिका हुआ। मधुपति भगवान्‌के कूजनसे रसात्मक हेमात्मक शृंगार रसका उद्बोधन सर्वथा योग्य ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। केवल और धर्मसे, इस रीतिसे दो प्रकारके शृंगाररसमें भी कूजनका कथन केवल: शृंगार रसकी अर्थात् शृंगाररसकी निष्पत्तिके लिये है। धर्मसहित सर्वगुण और लीलासे विशिष्टः स्वरूपका अनुभव करानेवाला कूजन नहीं हैं, किन्तु उसे तो सुधा सम्वलित नाद ही करते हैं और यह विषय 'वर्हापीडम्' तथा 'अक्षण्वताम्' श्लोकमें स्पष्ट कहा जायगा।

इस प्रकार प्रथम श्लोकमें भगवानके वृन्दावनप्रवेशका और द्वितीय श्लोकमें भगवानने देवताओंके किये हुएउ दूवोधनका वर्णन करके तृतीय श्लोकमें श्रीशुकदेवजी व्रजसुन्दरियों-के द्वारा किये हुए भगवद् गुणगानके वर्णनका आरम्भ करते हैं। वनसुन्दरियोंके साथ भगवानके किये हुए रमणके प्रसंग श्रीव्रजसुन्दरियोंका भी काम अर्थात् अभिलाषा रति अर्थात् प्रेम उद्बुद्ध—जाग्रत हुआ। उद्बुद्ध प्रेम ही आसक्ति होनेके कारण व्रजभक्तोंकी भी आसक्ति प्रकट हुई। प्रभुने वेणु-कूजन द्वारा वनसुन्दरीके शृङ्गाररसका मुख्य रूपसे और व्रज-सुन्दरीके शृङ्गाररसका तो प्रासंगिक उद्बोधन किया, भगवत्कृत वेणुकूजनसे कामिनीके कामका उद्बोधन होता है अतएव प्रसंगानुसार कूजन द्वारा श्रीव्रजसुन्दरियोंको भी उत्कण्ठा प्रकट हुई। शब्द द्वारा कामको जागृत करके श्रीव्रजसुन्दरियोंने भी 'अन्तःप्रविष्टो भगवान्' इस कारिकामें कथित प्रकारके समान अपने हृदयमें विराजमान भगवानके वर्णन द्वारा शब्दसे ही वाहर उद्बोध करनेके लिये गुणगान करके व्रजस्त्रियोंने भगवानको उद्बोधन करना चाहिये अर्थात् जिस प्रकार भगवान्ने वेणुनादके द्वारा व्रजस्त्रियोंमें कामका उद्बोधन किया। वैसे ही व्रजस्त्रियोंने गुणगान द्वारा उद्बोधन किया भगवानमें और भक्तमें इन दोनोंमें शब्द ही उद्बोधक है अतएव अपने समानशील व्यसन जिनमें हैं ऐसे अपने सखीजनोंके समीप भगवद्गुणवर्णनका आरम्भ किया। इस प्रसंगको श्रीशुकदेवजी अग्रिम तृतीय श्लोकमें कथन करते हैं॥ २॥

सुबोधिनीजी—इस प्रकार उद्बोधनका वर्णन कर उनके साथ वंशीनिनाद द्वारा रमण कर कामिनियोंके कामके उद्बुद्ध होने पर व्रजस्त्रियोंका भी काम जागृत हुआ। तदनन्तर कामके वश होकर भगवानको जागृत करनेके लिये अपनी सखियोंके सामने अर्थात् अपने समान शील व्यसन इत्यादि युक्त सखियोंके सम्मुख "तद्व्रजस्त्रियः" इस श्लोकसे उनके गुणोंका वर्णन करने लगी।

तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्।
काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्॥ ३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भावार्थ—उन व्रजस्त्रियोंने उस प्रकारके कामविवर्धक वंशीनिनादको अच्छी तरहसे सुना और कितनी ही गोपियोंने श्रीकृष्णके परोक्षमें अपनी सखियोंके सामने उसका वर्णन किया ॥ ३ ॥

सुबोधिनीजी—वह कूजन आधिदैविक था इसलिये उसका श्रवण उन लोगोंने बहुत सावधानीसे किया। नहीं तो वनमें होनेवाले उस वंशीनिनादको व्रजमें रहनेवाली गोपियाँ कैसे सुन सकती थीं ? जिस प्रकार अन्य देवगण उद्बुद्ध हुए उसी प्रकार कामदेव भी उद्बुद्ध हुआ, क्योंकि नाद उद्दीपन विभाव है। उन व्रजाङ्गनाओंमें कितनी ही गोपियाँ कामसे मूर्च्छित हो गयीं और कुछ गोपियोंको भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे हृदयमें ही भगवानका संग प्राप्त हो जानेसे वे श्रीकृष्णके परोक्षमें रहनेवाली अपने समानशील और व्यसनविशिष्ट अपनी सखियोंके सामने वर्णन करने लगीं ॥ ३ ॥

विवेचन—प्रभुने वृन्दावनमें प्रवेश करके प्रथम अस्पष्ट वेणुकूजन किया, तत्पश्चात् वेणुके द्वारा लीलाविशिष्ट स्पष्ट अर्थवाले रसनिरूपक स्वरूपका गान किया। यदि वेणुनाद आधिदैविक न हो तो वेणुनादका सब प्रकारसे श्रवण व्रजस्थित श्रीगोपीजन किस प्रकार कर सकती हैं ? पुनः इस वेणुनादका श्रवण भी केवल व्रजमें स्थित श्रीगोपीजन ही कर सकीं अन्य नहीं अतएव यह वेणुनाद आधिदैविक है यह स्पष्ट सिद्ध हुआ। भगवान् जो जो कार्य करते हैं उसमें प्रयोजन रहता ही है। जीवके समान बिना प्रयोजनका व्यर्थका काम भगवान् नहीं करते। रमणके लिये भावको उद्दीप्त करना यही कूजनका प्रयोजन होनेसे जिनके साथ भगवान्को रमण करनेकी इच्छा नहीं है वह भी यदि श्रवण करे तो भगवान्का कराया हुआ श्रवण बिना प्रयोजनका हो जाय यह योग्य नहीं है। कुछ विचारक कहते हैं कि श्रवण सबने किया; किन्तु रति स्थायी भाव व्रजमें स्थित श्रीगोपीजनोंमें होनेके कारण उनके भावका ही उद्दीपन हुआ अन्य जनोंको नहीं, यह मत दोषयुक्त है; क्योंकि सर्वज्ञ भगवान् जीवके समान प्रयोजनरहित कार्य नहीं करते। पुनः वेणुनाद शुष्क अर्थात् रुक्षनाद मात्र नहीं है, वस्तुतः वह वेणुनाद सुधा मिश्रित है, वेणुनादमें सुधाकी निष्ठा है यदि ऐसा न माने तो वेणुनाद निष्ठा सुधा अपने प्रवेश मात्रसे भगवदीयता सम्पादन करती है, यह भगवदीयता प्राप्त करानेवाले सुधाके स्वभावकी हानिका प्रसंग प्राप्त हो, इस कारणसे यह समझना चाहिए कि वेणुनादका श्रवण सभीने किया; किन्तु जिनमें रतिरूप स्थायी भाव है उनके भावका उद्दीपन हुआ इस प्रकारके प्रयोजनरहित जीवतुल्यता सम्पादन करनेवाले पक्षका परित्याग करके अपने प्रवेश मात्रसे ही वेणुनादमें स्थित सुधाका भगवदीयता सम्पादन करनेका स्वभाव लक्ष्यमें रखकर भगवानका उत्कर्ष जिसमें सिद्ध हो ऐसे सप्रयोजनवाले सिद्धान्तका आदर करना उचित है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जो भक्त स्वामिनीभावयुक्त है और जिनको दूरसे भी श्रवण करानेकी भगवानकी इच्छा है उनमें भगवानने वेणुकूजनके श्रवणकी सिद्धि स्थापित की अर्थात् उनको ही श्रवण हुआ है; क्योंकि भावका उद्दीपन करना यह कूजनका सहज स्वभाव है। जीवकी कृतिकी अपेक्षा भगवानकी कृतिका इस प्रकार सनातन उत्कर्ष वेणुकूजनका आधिदैविकत्व भली भाँतिसे सिद्ध होता है। वेणुकूजनके जो अधिकारी हैं और जिनको भगवानने स्वयं स्वामिनीभावसे अंगीकार किया है वे दूरसे भी भगवानके स्वरूपका दर्शन और वेणुनादका श्रवण कर सकते हैं। जिनको यह अधिकार नहीं है वे समीपमें भी दर्शन श्रवणादि नहीं कर सकते। यह विलक्षणता सकारण है फलसमर्थक है और आधिदैविकतामें सर्वथा योग्य है यह निरूपण धन्यवादयोग्य है। भगवत कृत उद्दीपन विभावरूप वेणुकूजनसे सर्वलीलोपयोगी व्रज श्रीमन्तिनी प्रभृत्ति देवताओंको उद्बोध हुआ और स्मर अर्थात् कामदेवका भी उद्बोध हुआ; क्योंकि आधिदैविक स्मर भी लीलोपयोगी देवता है। उद्बोध, उदय और उत्थान इन समस्त पदोंका अर्थ यही है कि अपनी सेवाका समय आया यह समझकर सेवाके लिये सावधान होना उचित है। सेवाका अपना समय आया यह जानकर लीलोपयोगी व्रज श्रीमन्तीनी प्रभृत्ति सब सावधान हो गये इसी प्रकार आधिदैविक स्मर अर्थात् काम भी वहाँके भक्तसमाजके मान परिहारादि कार्यके लिये उस समाजकी मानसी उत्कण्ठा जागृत करके अपनी सेवामें सावधान हो गया।

नाद उद्दीपनविभाव है, अतएव नादसे स्मरका उदय होता है यह उचित ही है, वेणुनादका श्रवण करनेवाली श्रीगोपीजनोंमेंसे भी कोई तो स्मरके उदयसे मूर्च्छित हो गयीं तथापि उतना ही भगवानके गीतका श्रवण करके कृपा द्वारा इसीको अन्तस्थित भगवानका हृदयमें समागम भी प्राप्त हुआ इनको मूर्च्छा हो गयी उनको केवल व्यभिचारभाव अज्ञान ही रहा इस कारण उनके द्वारा भगवद्गुणका वर्णन न हो सका; किन्तु गीत श्रवण करनेके पश्चात् जिनको भगवत् कृपासे भगवत् संग प्राप्त हुआ उन्होंने उस संगसे प्रभुके परोक्षमें अपने समान शील और व्यसनवाले सखीजनोंके समीप वर्णन किया है इस प्रकार वेणुगीतश्रवण करनेवालोंमें भी जो मूर्च्छित हुए वे तथा जो वर्णन कर सके इस प्रकार दो भेद हैं और उस रसके पोषक ही हैं गीतका श्रवण करनेके पश्चात् मूर्च्छा न होकर अन्तर भगवत्संग प्राप्त हो और अपने सखियोंके पास उसका वर्णन कर सके यह कार्य भगवत् कृपाके बिना नहीं हो सकता अतएव सर्व श्रवण करनेवाली गोपीजनोंने वर्णनका आरम्भ नहीं किया; किन्तु जो विशेष कृपापात्र रहे ऐसे कोई गोपीजन 'अक्षण्वताम्' प्रभृत्ति तेरह श्लोकसे वर्णनका आरम्भ किया, यहाँ पर यह समझना उचित है कि 'अक्षण्वताम्' इत्यादि तेरह श्लोकसे वर्णित तृतीय श्लोकको समाप्तिमें 'अन्ववर्णयन्' पदसे शुकदेवजीने स्पष्ट कहा है। श्रीगोपीजनोंने किस प्रकार वर्णन किया ऐसी जिज्ञासा होनेपर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शुकदेवजीने 'तद्वर्णयितुमारब्धाः' ऐसा चतुर्थ श्लोकमें आरम्भदशा के स्मरवेगसे उत्पन्न प्रतिबन्धका कथन किया। इस प्रतिबन्धको निवृत्त करनेका सामर्थ्य गोपीजनोंमें नहीं है, अतः 'बर्हापीड़म्' इत्यादि पञ्चम श्लोकमें वर्णित गुणलीलाविशिष्ट निज स्वरूपसे भगवानने उस प्रतिबन्धको निवृत्त किया और वेणुरवकी सुधा द्वारा भगवद्गुणका वर्णन करनेकी शक्तिका दान श्रीगोपीजनोंको किया इसमें कहा हुआ 'बर्हापीड़म्' यह पद उद्बुद्ध शृङ्गाररसरूप 'नटवरवपुः' पदमें कथित विप्रयोग शृंगाररसरूप और संयोग शृंगाररसरूप इस प्रकार द्विदल विशिष्ट 'कर्णयोः कर्णिकारम्' पदमें कथित शृंगाररस पक्षपाती उच्छलित रसभावयुक्त 'वासः कनककपिशम्' पदमें कथित गोप्य रसयुक्त 'वैजयन्तीञ्च मालाम्' पदमें कथित वैजयन्तीमाला और वनमाला धारण करनेवाले शृंगाररसमें उपयोगी सर्व रससम्बन्धी यशको बतानेवाले और 'रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन्' पदमें कथित भोग्यत्व सूचित निगूढ पुष्टिमार्गके तत्त्वरूप स्त्रीभाव और उस स्त्रीभावसे सूचित भक्तस्त्री ऐसे शुद्ध पुष्टिमार्गीय रसस्वरूपका बोधन वेणुरवने किया। उस समय गोपीजनमें नादका प्रवेश कर्ण द्वारा हुआ और नादमें स्थित सुधाके सम्बन्धसे उनके देहमें, इन्द्रियोंमें, प्राणमें, अन्तःकरण और जीवमें भी शुद्ध पुष्टिमार्गीय रसात्मक स्वरूपका प्रादुर्भाव हुआ, यह सब पञ्चम श्लोकमें कह कर गानके प्रतिबन्धको दूर करनेके लिये अलौकिक सामर्थ्यका दान जो श्रीगोपीजनोंको हुआ है इस विषयको श्रीशुकदेवजीने प्रतिपादन किया है। इसमें 'वृन्दारण्यं प्राविशत्' पदसे श्रीशुकदेवजीने प्रभुके वृन्दावनप्रवेशका कथन किया, यहाँ भी वृन्दावनपदसे श्रीगोपीजनोंके हृदयका बोध होता है; क्योंकि श्रीगोपीजनोंके हृदय वृन्दावनरूप ही है और 'वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिम्' इस दशम श्लोकके व्याख्यानमें वृन्दावनका यथार्थ स्वरूप इसी प्रकार वर्णन किया जायगा।

इस प्रकार सुधासम्वलित श्रीवेणुनादके द्वारा शुद्ध पुष्टिमार्गीय रसात्मक भगवत् स्वरूपका प्रवेश निःसाधन गोपीजनोंके हृदयमें हुआ तदनन्तर उस वेणुनादमें स्थित सुधाकी प्रतिक्षण वृद्धिसे उनका उद्गाररूपसे वर्णन हुआ। वह 'इति वेणुरवम् राजन्' इस छठे श्लोकमें कहा इस प्रकारके समन्वयसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि 'स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्' में जो अनुवर्णन किया उस वर्णनके प्रकारकी जिज्ञासा होने पर 'तद्वर्णयितुमारब्धाः' इस चतुर्थ श्लोकमें वर्णनके प्रारम्भमें जो प्रतिबन्ध हुआ उसका निर्देश करके 'बर्हापीड़म्' इस पंचम श्लोकमें निःसाधन व्रजभक्तके निवृत्तिपूर्वक वर्णन शक्ति देनेवाले गुणलीला विशिष्ट उदभूत शृंगाररसरूप स्वरूपात्मक वेणुनादका वर्णन करके 'इति वेणुरवम्' षष्ठ श्लोकके इस पदके वर्णनका समर्थन श्रीशुकदेवजीने किया है॥ ३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुबोधिनीजी—उन गोपीजनोंको भी कामके उद्बोधन होनेपर विशेष वर्णन करनेकी शक्ति न रही यह बात "तद्वर्णयितुम्" इस चतुर्थ श्लोकमें श्रीशुकदेवजी कहते हैं।

तद् वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम्।
नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप! ॥४॥

भावार्थ—उसका वर्णन तो उन्होंने प्रारम्भ किया, किन्तु हे राजा परिक्षित! कृष्णलीलाके स्मरण होते ही कामातिरेकसे उनका चित्त विक्षिप्त हो गया और वे वर्णन न कर सकीं ॥४॥

सुबोधिनीजी—स्वयं अनुभव किये हुए भगवानके उस स्वरूप और वेणुगीतका वर्णन कार्य कारण, फल तथा स्वरूपसे प्रारम्भ किया। तदनन्तर बीच ही में श्रीकृष्णकी लीलाओंका स्मरण हो गया तथा उस स्मरणसे समुत्पन्न कामसे ही वेग अर्थात् चित्तमें चञ्चलता उत्पन्न हुई अतएव उनका मन विक्षिप्त हो गया। श्लोकमें आये 'राजा' (नृप) इस सम्बोधनसे धर्मवत्ता और जितेन्द्रियता सूचित होती है ॥ ४ ॥

विवेचन— इस प्रकार प्रतिश्लोकमें कामदेवको उद्दीपन करनेवाले वेणुगीतका गोपीजनोंके द्वारा किये हुए श्रवणका कथन किया और उन गोपीजनोंमेंसे कोई गोपी ही वर्णन करनेमें समर्थ हुई ऐसा कहा है। जो गोपीजन मूर्च्छित हुए थे उनको तो प्रथमसे ही वर्णनकी शक्ति न थी; किन्तु विशेष प्रकारके कारण जिनको मूर्च्छा प्राप्त नहीं हुई थी और हृदयमें भगवत्सम्बन्ध प्राप्त हुआ था। एवं जिन्होंने वर्णनका प्रारम्भ किया था उनको भी भगवत्लीलाके स्मरणसे पुनः कामका उद्बोध हुआ। भगवानके वेणुकूजनसे और वेणुगीतसे कामका प्रथम उद्बोध आरम्भ हुआ था। उस अवस्थामें भी वर्णनके लिये कृष्णलीलाकी हुइ स्मृतिसे पुनः विशेष रीतिसे कामका उद्वेग हुआ। अतः उनको भी विशेष रूपसे वर्णन करनेकी शक्ति न रही। इस प्रसंगको श्रीशुकदेवजी कहते हैं।

लीलामें स्वयं अनुभव किये हुए भगवत् स्वरूपका अथवा वेणुगीतके भगवत् स्वरूपका वर्णन चार प्रकारसे निरुपण करनेका आरम्भ किया। १—कार्यसे २—कारणसे, ३—फलसे और ४—स्वरूपसे। श्रीगोपीजनोंने लीलामें अनुभव किये स्वरूपका अथवा वनसुन्दरीके साथ लीला करनेवाले और प्रभुने ही श्रीगोजनोंको उद्बोध करनेके लिये वेणुद्वारा गायन किये हुए भगवत् स्वरूपका अथवा प्रचलित वेणुगीतरूप भगवत् स्वरूपका वर्णन आलिंगन आदि कार्यसे भगवद् भावके उद्बोधरूप कारणसे स्वरूपानन्दके स्थापनरूप फलसे और प्रकट अवयत्व प्रभृत्ति स्वरूपसे इन चार प्रकारोंसे निरूपण प्रारम्भ किया। उस मध्यमें कृष्णलीलाका स्मरण वर्णन करनेके लिये हुआ और उस कारण काम उद्दीप्त हुआ जिससे चित्तमें चांचल्यरूप वेग प्रगट हुआ और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उससे वर्णन करनेवाले गोपीजनोंके मन विक्षिप्त हुए। जब यह प्रतिबन्ध निवृत्त हुआ तब चारों प्रकारसे वेणुगीतका वर्णन हुआ। इस वर्णनमें 'वृन्दावनं सखि' इस श्लोकमें कार्यसे वेणुगीतका निरूपण है। 'अक्षण्वता' फलम्' इस श्लोकमें कारणसे निरूपण है, क्योंकि वेणुगीतका कारण भगवानका मुखारविन्द है और उनका निरूपण इस श्लोकमें है। 'गोप्यः किम्' श्लोकमें स्वरूपसे 'गागोपकैः' श्लोकमें फलसे निरूपण है। स्मरके वेगसे चित्त चंचल होने पर श्रीगोपीजन इस प्रकार विक्षिप्त मनवाले हो गये; किन्तु हे परीक्षित। तू तो धर्मवान् है जितेन्द्रिय है और धीर है। राजा होनेसे इस रसका तुम्हें ज्ञान नहीं है ॥ ४ ॥

सुबोधिनी—जिसका वर्णन व्रजस्त्रियाँ न कर सकी उनके उस असामर्थ्यका बोध करानेके लिये स्वयं शुकदेवजी "बर्हापीडम्" इस पञ्चम श्लोकसे वर्णन करते हैं—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीञ्च मालाम्
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैः,
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥५॥

भावार्थ—मयूरपिच्छके मुकुटसे समलंकृत, अत्यन्त कमनीय नटवरके समान सुवेषसे सुशोभित शरीरवाले, कानोंमें कर्णिकारके पुष्पको धारण करनेवाले, कनकसमान पीतपटधारी वैजयन्ती मालासे विभूषित, अधरामृतसे मुरलीके छिद्रको भरते हुए—अत्यधिक कीर्तिशाली श्रीकृष्णने गोपमण्डलीके साथ, अपने चरणसे रमणस्वरूपको प्राप्त होनेवाले वृन्दावनमें प्रवेश किया ॥५॥

सुबोधिनीजी—यहाँ केवल रूपका ही वर्णन नहीं करना है; किन्तु वाक्यार्थका वर्णन करना है। वाक्यार्थके वर्णनसे ही रूप, मुरलीनिनाद और क्रीड़ा इन तीनोंका वर्णन हो जायगा और इन तीनोंके परस्पर संबन्धमें जो विशेषण है उसका भी वर्णन हो जायगा। इस प्रकारके सुन्दर शरीरको धारणकर मुरली बजाते हुए भगवान् श्रीकृष्णने वृन्दावनमें प्रवेश किया। सम्बन्ध इस प्रकार है—स्वरूप, गुण और लीलाको क्रमशः कहा है।—बर्ह अर्थात् मयूरपिच्छ, वह ही जिसके सिरका भूषण है, इस प्रकारके भगवान्। नाचते हुए मयूरका यह अनुकरण है। जब मयूरमें रस उब्दुद्ध होता है तब ही वह नृत्य करता है अतएव भगवान्में भी मयूर पिच्छके मुकुटसे रस उद्बुद्ध हुआ है ऐसा प्रतीत होता है। अतएव वर्णनका असामर्थ्य उचित ही है, यही आशय है। भगवान् श्रीकृष्णका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीअंग नट और वरके सदृश है। रस दो प्रकारका होता है, धर्मसहित और केवल धर्मसहित रस सम्भोगमें तथा केवल रस नाट्यमें प्रसिद्ध है। भगवानका श्रो अंग दोनों प्रकारका है। इसीलिये नटवत् तथा वरवत् ऐसे दोनों प्रकारसे कहा है। नवीन भोक्ताको वर कहते हैं। यद्यपि भगवान् तो हृदयमें भी हैं ही तो भी केवल हृदयमें ही रहनेसे ही ज्ञानियोंके समान व्रजाङ्गनाओंको सुखकी प्राप्ति न हो सकी, इसीका बोध करानेके लिये शरीरका धारण (श्रीअंग धारण किया) ऐसा निरूपण करते हैं। स्वाभाविक हो ऐसे हैं यह बात नहीं जिन्होंने दोनों कानोंमें कर्णिकारका कुसुम धारण किया है। कर्णिकार शृंगारका उद्बोधक है। संयोग और विप्रयोगके भेदसे शृंगार दो प्रकारका होता है, दोनों कान उन उन दोनों शृङ्गारोंका प्रतिपादन करते हैं। उन दोनों शृङ्गारोंका कर्णिकार पुष्पसे संबन्ध होनेसे पहले निरूपण किया हुआ रस उमड़ पड़ता है (उच्छलित हो जाता है)। ऐसे रसको तो गुप्त रहने पर ही रस कहा जा सकता है, अतएव उस रसको ढकनेके लिये पीताम्बरका वर्णन करते हैं। वे भगवान् सोनेके समान पीले वस्त्रको धारण किये हुए हैं। रसके जागृत हो जाने पर गोपियाँ वस्त्र इत्यादि पर ध्यान नहीं दे सकती, अतएव व्यामोह (अज्ञान) उत्पन्न कर देनेवाले सुवर्णकी समानताका वस्त्रोंमें निरूपण किया है। सुवर्णके सदृश पीले वस्त्र वह ही माया है। अतएव जिसमें वस्त्रका आकार भी सम्यक् प्रकारसे मालूम नहीं पड़ता, उसमें उस वस्त्रसे आच्छादित रस कैसे सर्वसाधारणके वेद्य हो सकता है। उस पर भी दूसरा आच्छादक है। उन्होंने कीर्तिमयी बनमाला और वैजयन्तीमालाको धारण कर लिया है। 'वै' अर्थात् अवश्य ही सब प्रकारकी विजयको प्रकाशित करनेवाली मालाको वैजयन्ती माला कहते हैं। इस प्रकार दो रस, उन दोनोंका उद्बोधनका आच्छादक, उनका विक्षेपक (क्षुब्ध करने वाला) इत्यादिका भगवानके रूपके विषयमें निरूपण किया गया।

नामलीला स्वरूप वेणुनिनादका निरूपण "रन्ध्रान् वेणोः" इत्यादिसे करते हैं। मुरलीके सात छिद्र हैं। सुधा भी तीन प्रकारकी है—देवभोग्या, भगवद्भोग्या और किसीसे भी नहीं भोगने योग्या। इस प्रकरणमें समाविष्ट सुधा तो उन तीनों प्रकारकी सुधाओंमें सर्वश्रेष्ठ है, कारण कि लोभस्वरूप अधरमें उसे रखा गया है। उसकी साक्षात् अनुभूति उच्छिष्टके द्वारा नहीं हो सकती है। अतएव वह कानसे ही पान करने योग्य है। वह सुधा प्रत्येक जनको भगवदीय बना देती हैं, वह प्रकट द्रवीभूत आनन्दस्वरूपा है, ब्रह्मानन्दकी अपेक्षा भी अधिक श्रेष्ठ है, आनन्दका सार रूप है, इसलिये किसी भी प्रकारसे वह स्व साधन स्वरूप नहीं हो सकती है। अतएव उसे नादब्रह्ममें जोड़नेके लिये नादके उत्पत्तिस्थान वेणुमें, उसके छिद्रोंमें अमूर्त (स्वरूपविहीन) होनेसे भर सके, वह सुधा, मुरलीका भी साक्षात् स्पर्श नहीं करती है इसीलिये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"वेणोः" इस प्रकार भिन्न पद रखा गया है अर्थात् समास नहीं किया गया है। मुरलीके मध्यमें भी वह नहीं है, अतएव जब नाद उसके द्वारा जाता है तब वह नादके साथ संबंधी होकर जाती है, तदनन्तर कर्ण द्वारा हृदयमें प्रविष्ट हो जाती है, तथा वर्णन करनेके समय मुखमें आती हुई, मुखको भी अपने उपभोगके योग्य बना देती है। जब तक रसकी अधिकतासे वह अंश भी प्रविष्ट नहीं हो जाता है तब तक साक्षात् उसमें उपभोगकी योग्यता नहीं हो सकती है इसीलिये वर्णन किया गया है। उसके रसके प्रयोगसे निरोध सिद्ध होता है अतएव अतिस्वल्प रस गोपगणमें प्रवेश करता है तथा भगवद्भोग्या गोपियोंसे अतिरिक्त दूसरोंमें भी प्रविष्ट है। इसीलिये भक्तिके बाद निरोधका निरुपण किया गया है। लीलासृष्टिमें उत्पन्न भोगकी यह ही चरमावधि है। तदनन्तर भगवान् उसे मुक्त कर देते हैं तथा भगबत्सरुपताकी प्राप्ति करा देते हैं।

फिर कामके अतिशय जागृत होने पर वे भी विशेष वर्णन करनेमें असमर्थ हो गयीं, यह बात "तद्वर्णयितुमारब्धाः" इस श्लोकसे कहते हैं—यदि वे ऐसा नहीं कर दें तो उनकी सृष्टि ही व्यर्थ हो जायेगी। जब ब्रह्मानन्दभाव हो जाय तथा उसमें भी आधिदैविक रूप सिद्ध हो जाय तब श्रीलक्ष्मीजीके समान यह प्रधान रस भोगा जा सकता है और लक्ष्मीके अंशोंके क्रमसे इस रसकी प्राप्ति होती है। अतएव निरोध ही ऐसा पदार्थ है जिसका महान् फल है इसीलिये यहाँ स्त्रियोंके प्रकरणके अन्तमें इसका निरूपण किया है। भगवद् भोगके पीछे ही भगवान् भोग्य होते हैं। यही कारण है कि यहाँ शुकदेवजीने भी प्रधानतया स्त्रियोंका ही वर्णन किया है। इसीलिये अग्निकुमारोंके भी स्त्रीरूप धारणका वर्णन मिलता है। पुरुषोत्तमको कोई दूसरा पुरुष नहीं भोग सकता और स्वयं भी अपना भोग्य नहीं होता है, किन्तु जान कर पान करनेमें अत्यधिक रस प्राप्त होता है। यह ही हेतु है कि भगवान्ने आगे श्रीउद्धवजीके द्वारा ज्ञानके उपदेशका निर्बन्ध किया है। अथवा मुख्यकी प्राप्तिके लिये तथा क्लेश दूर करनेके लिये ज्ञानोपदेशका निर्बन्ध किया है। इसीलिये आगे वे आधिदैविक स्त्री कात्यायनीकी प्रार्थना करेंगे, अतः रूपके द्वारा वश करके अधरामृतका पान कराते हुए स्वच्छन्दताको सिद्ध कर देते हैं। "गोपवृन्दैः" इस पदसे स्वच्छन्दताका वर्णन करते हैं—गोपगणके साथ, वृन्दारूपी स्त्रीके अरण्यमें प्रवेश किया, सम्पूर्ण कार्य करके स्वच्छन्दताका सम्पादन किया। अब यहाँ सन्देह होता है कि जगत् में भक्तिकी स्थापना तो भगवानने की नहीं तो कृतकृत्यता किस प्रकार हुई। इसके उत्तरमें "स्वपदरमणम्" ऐसा कहा है अर्थात् भगवान्के चरणका रमण वहाँ है। (भगवानने भक्तिकी स्थापना की है इसीलिये भक्तिस्वरूप चरणका रमण वहाँ है) धर्मकी स्थापना की इस बातको "गोपवृन्दैः सह" (गोपसमूहके साथ) इस पदसे कहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इनसे बचे हुए भी सम्पूर्ण पुरुषार्थोंकी स्थापना भगवानने की इसे बोध करानेके लिये 'गीतकीर्तिः' यह विशेषण रखा गया है। जिसके यशको सब कोई गावें उसे "गीतकीर्तिः" कहते हैं। ऐसे भगवान् ही हैं। पुष्टिमार्गमें स्त्रीभाव गूढ़ है ऐसा कहीं कृष्णपदके अर्थकी व्याख्या करते समय कहा गया है ॥ ५ ॥

सुबोधिनीजी—इससे सब गौण हो गया। वेणुनाद ही मुख्य रहा, अतएव उसका ही वर्णन करनेका आरंभ श्रीगोपीजनोंने किया इस बातको श्रीशुकदेवजी "इति वेणुरवम्" इस श्लोक से कहते हैं।

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम्।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योभिरेभिर ॥६॥

भावार्थ—हे राजन्! इस प्रकार समस्त प्राणियोंके मनको हरण करनेवाले वेणुरव श्रवण करके सर्व व्रजकी स्त्रियोंने उनके वर्णन करनेका आरंभ किया ॥६॥

सुबोधिनीजी—अतएव वेणुरवका वर्णन करनेके लिये वेणुरव का श्रवण करके वर्णन करनेका आरंभ किया इस प्रकार सम्बन्ध है। उसमें प्रथम श्रवण करनेके समय और वर्णनके लिये ही श्रवण करते समय आदर सहित श्रवण होता है इस प्रकार उत्पन्न हुआ वेणुनाद केवल वे रव ही नहीं है। 'राजन्' यह संबोधन यह सूचित करता है कि—इस रसका ज्ञान राजाको नहीं रहता, फिरभी यहाँ पर स्पष्ट अर्थ कहा नहीं है ऐसा समझना, फिरभी उसमें प्रवृत्ति किस प्रकार हुई होगी यदि ऐसी शंका हो तो प्रमेय बलसे ही प्रवृत्ति हुई होगी इस अभिप्रायसे कहते हैं कि समस्त प्राणिमात्रके मनको हरण करे ऐसा वह नाद है, यह नाद स्वयं मनको बश करनेमें समर्थ है अतएव उसका भलिभांति श्रवण करके उसमें सब प्रकारसे रमण करने लगीं। वे व्रजकी स्त्रियाँ रहीं अतएव उनको दूसरा कोई कार्य न रहा यह सूचन किया गया है। पुरुषवर्गके वनमें जानेके पश्चात् और संध्या समय तक उनके लौट आनेकी संभावना न होनेसे और समस्त आवश्यक कार्य प्रातःकालमें ही पूर्ण कर लेनेके कारण व्रजकी स्त्रियोंको अब वेणुरवके वर्णनके सिवाय कोई कार्य नहीं रहा, अतःएव समस्त ब्रजस्त्रियाँ वर्णन करती हुई आगे पीछे सब ओर रमण करने लगीं। दुःखात्मक प्रपंचका विस्मरण करके परमानन्दमें विलास करने लगीं, पूर्वमें प्रथमके श्रवण मात्रसे काम उद्दीपन होनेके कारण चित्तका विक्षेप होनेसे वर्णन करनेकी अशक्ति कही गई थी, पुनः ऊपरोक्त सर्वाभोग्यासुधा अन्तःकरणमें पूर्ण होनेसे और अधिक बढ़ जानेसे चारों तरफसे उनका आस्वाद लेती हों उस प्रकार वर्णन करने लगीं अतएव वर्णन पुनः कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(कारिका) रसद्वयार्थं द्वितयं वेणुपूरणमेकतः ।
स्वच्छन्दपादगमने हेतुश्चापि तथापरः ॥१॥
चतुर्भिः पीठिकैवं स्यात् षड्भिर्वेणोस्तुवादनम् ॥१½॥
द्वाभ्यां भक्तेः प्रतिष्ठा च दोषः स्याद् वर्णनेन्यथा ॥२॥
वैपरीत्यात् समाधानमन्यथा स्यात् तु दूषणम् ॥२½॥

संयोग और विप्रयोग इस प्रकार दो रसके वर्णनके लिये दो श्लोक हैं। एक श्लोक अर्थात् तीसरे श्लोकसे वेणुके पूरणका वर्णन किया। स्वच्छंद रीतिसे चरणके गमनमें हेतुका उसके बादके चतुर्थ श्लोकसे वर्णन किया है इस प्रकार चार श्लोकसे पीठिका कही गई है। छः श्लोकसे वेणुका वादन कहा गया है इस प्रकार छः श्लोकसे नामलीला रूप वेणुवादनका निरूपण करके दो श्लोकसे भक्तिका भलिभांति स्थापन किया यह कहा गया है। यदि भक्तिका स्थापन न किया जाय तो वर्णन करनेमें दोष आजाता है। इस विषयका विपरीततासे समाधान किया है। जड़में चेतनके धर्म और चेतनमें जड़के धर्म वेणुनादके द्वारा आया यह विपरीततासे समाधान किया। अन्यथा दूषण प्राप्त होता है।

सुबोधिनीजी—प्रथम जो वर्णन करनेका आरंभ किया उसमें गोपीकाओंकी अशक्तिके कारण उनका वर्णन श्रीशुकदेवजीने स्वयं "बर्हापीड़म्" इस श्लोकसे किया है। उसका चार श्लोकसे अब फलरूपसे श्रीगोपीजन वर्णन करती हैं, उसमें प्रथम स्वरूपसे रसात्मक भगवान् का वर्णन "अक्षण्वतां" इस श्लोकसे करती हैं।

गोप्य उचुः ।

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः ।
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यै ॥
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं ।
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥७॥

भावार्थ— हे सखियाँ! सखाओंके द्वारा पशुओंको वनमें प्रवेश कराने वाले व्रजेश-श्री नन्दरायजीके सुतोंके वेणुनाद करते हुये तथा अनुराग से कटाक्षयुक्त मुखका जिन्होंने सेवन अथवा पान किया है उन इन्द्रिय वाले अथवा नेत्रवालोंको यही फल है, किन्तु मोक्ष नहीं है इस प्रकार हम जानती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(कारिका) भगवता सह संलापो दर्शनं मिलितस्य च ॥ ३ ॥
आश्लेषः सेवनं चापि स्पर्शश्चापि तथाविधः ॥ ३½ ॥
अधरामृतपानं च भोगो रोमोद्गमस्तथा ॥ ४ ॥
तत्कूजितानां श्रवणमाघ्राणं चापि सर्वतः ॥ ४½ ॥
तदन्तिकगतिर्नित्यमेवं तद्भावनं सदा ॥ ५ ॥
इदमेवेन्द्रियवतां फलं मोक्षोपि नान्यथा ॥ ५½ ॥
यथान्धकारे नियतास्थितिर्नाक्ष्णोः फलं भवेत् ॥ ६ ॥
एवं मोक्षोपीन्द्रियादियुक्तानां सर्वथा न हि ॥ ६½ ॥
बाधकानां परित्यागे साधकानां न तद् भवेत् ॥ ७ ॥

"अक्षण्वतां" अर्थात् ग्यारह इन्द्रियवालोंका अथवा नेत्रधारियोंका यह अर्थात् गोपीजनोंके अपने हृदयमें मनोरथ रूपसे जिनका भास हुआ है वह भगवत् स्वरूप ही फल है, भगवान् के साथ संलाप अर्थात् वार्त्तालाप करना, प्राप्त हुए भगवानके दर्शन करना, आश्लेष करना अर्थात् आलिंगन करना और सेवा करना इसी प्रकार स्पर्श करना, अधरामृतका पान करना, भोग करना और रोमका उद्गम होना, भगवान् जिन शब्दोंका कूजन करें उसका श्रवण करना, सब प्रकारसे भगवानके श्रीअंगकी सुगन्ध लेना भगवानके पास नित्य जाना इस प्रकार भगवानकी सदैव भावना करना यही इन्द्रियधारियोंका फल है। मोक्ष भी अन्य किसी प्रकारका नहीं है। जिस प्रकार अन्धकारमें सदैव रहना यह कुछ चक्षुधारियोंके लिये फल नहीं कहा जा सकता इसी प्रकार इन्द्रिय धारण करनेवालोंको जिसे लोग समान्य रीतिसे मोक्ष कहते हैं वह वस्तुतः फलरूप नहीं है। बाधकोंका परित्याग करनेसे और साधकोंकी प्राप्ति करनेसे वैसा मोक्ष नहीं होता। मोक्ष फल नहीं है यह "न परं विदामः" पदसे कहते हैं। परम अर्थात् मोक्ष सायुज्यादि। श्रुतिमें कहा है कि आत्मलाभसे पर अर्थात् श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। पुनः पर अर्थात् मोक्ष वह पुरुषार्थ क्यों न कहा जाय, इसके उत्तरमें श्रीगोपीजन कहती हैं कि—हमें सब कुछ विदित है। हम भी उपनिषद् रूपा हैं अतएव हम भी जानती हैं। श्रुति अनुभवके विरुद्ध अर्थात् अनुभवमें जिसका परिणाम न हो वैसा फल नहीं कहती इसलिये जो केवल अर्थात् इन्द्रिय रहित हैं उनको ही मोक्षफलरूप है। जो इन्द्रिय युक्त हैं उनको तो फल यही है जो "बर्हापीड़म्" श्लोकमें भगवानके दर्शन होते हैं, इस प्रकार भिन्न-भिन्न व्यवस्था समझ लेना चाहिये। इस अर्थमें दूसरी श्रुतिरूपा गोपिकाओंकी सम्मति है, यह "हे सख्यः" इस पदसे कहा है। जहाँ पर समान शील

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एवं व्यसन रहते हैं वहीं पर सख्य पदका प्रयोग होता है, अतएव अन्य श्रुतियोंकी भी सम्मति कही है, इस प्रकारका अनुभव कुछ गोपीजनोंको ही होता है, इस कारणसे समस्त गोपीजनोंको जो साधारण अनुभव होता है उस पक्षको कहती हैं कि—चक्षुधारियोंका यही फल है, इस पक्षमें "अक्षण्वतां" इस पद का अर्थ चक्षुवाले ऐसा समझना चाहिये। अथवा उस पदकी आवृत्ति कर लेना चाहिये। पशुओंके पीछेके भागमें अपने समान वयके मित्रोंके साथ पशुओंको वनमें प्रवेश कराते हुए राम और कृष्णके एक मुखारविन्दका जिन्होंने भलीभांति पान किया वे चक्षुवाले और इन्द्रियवालोंको फल है।

"वा" यह पद इस श्लोकमें अनादरके लिये कहा गया है, क्योंकि मुखकी अपेक्षा यह गौण है। समस्त इन्द्रियोंको प्रभुमें लगानेकी अपेक्षा केवल चक्षुसे दर्शन करना यह गौण है। जो कालसे समान है उनके साथ इस रसको नहीं जाननेवाले पशुओंको भगवान् वनमें प्रवेश कराते हैं, क्योंकि निर्गुण अवस्थाके अधिकारका अभाव हो वहाँ सात्विक अवस्था योग्य ही है। काल भगवानकी लीलामें निमित्त है। गोपके और लीलाके भी आधार रूप भगवत् प्राकट्य निमित्त है अतएव "गोपवयस्य" अर्थात् समान अवस्था वाले मित्र हैं, इस कारण उनके द्वारा पशुओंको वनमें प्रवेश कराते हैं, अथवा वे जो समकालीन अर्थात् समान वयके हैं उनके साथ भगवान् वनमें प्रवेश कराते हैं अथवा समान वय वालोंका सहभाव भगवानके साथ है। ऐसा होनेसे वनमें प्रवेश कराये हुए पशुओंको और गोपोंको भी श्रम हो तथा उनके स्थानमें निवेशनके निमित्त वयस्योंका सहभाव कहा है। आविष्ट स्वरूप वाले श्रीबलदेवजीका मुखारविन्द स्पष्ट नहीं है इस कारण भगवानके मुखारविन्दको ही उत्तम रूपके अर्थात् राम और कृष्णके मुखारविन्द रूपसे जिन्होंने साधारण रीतिसे चक्षुद्वारा अन्तःकरणमें प्रवेश कराया है उनका फल यह मुख ही है, क्योंकि वह सर्वव्यापक चित्तका आकर्षण करके एक ही स्थानमें उसका धारण करना अन्यका चिंतन पुनः नहीं करना। "सुस्मित युक्त मुखकी भावना करनी" ऐसा प्रमाण रूप वाक्य है, पुनः श्रीगोपीजन अपने हृदय में भावना किये हुए मुखका निरूपण करती हैं। सार यह है कि साधारण पक्ष रूपमें सामान्य रीतिसे यद्यपि बलभद्रजीका निरूपण किया तथापि मुख निरूपणके प्रस्तावमें अन्य किसीका अर्थात् रामके मुखसे मिला हुआ मुख इन गोपीजनोंके हृदयमें नहीं आता, अतएव दो मुख न कह कर केवल एक भगवान् के श्रीमुखका ही निरूपण किया है। मुखके एकत्वका प्रतिपादन करते हुए ईश्वर रूपसे आराधन बुद्धिसे अथवा अनुरोध बुद्धिसे जिनका पान है वह तो सापेक्ष है ऐसा आनादरमें हेतु व्रजेश अर्थात् नन्दरायजीके सुत इस पदसे कहा है श्रीबलभद्रजी व्रजेशके सुत अर्थात् पुत्र नहीं हैं आवेशके पक्षमें तो कृष्ण ही बलभद्रके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूपमें आवेश करते हैं अतएव वहां दोनों रूपका व्रजेश सुतत्व युक्त है। लौकिककी अपेक्षावाला दर्शन अनादरमें हेतु है।

अन्य श्रीगोपीजन पुनः गीतके रसको भलिभांति जाननेवाले वेणुनादके श्रवणके लिये भगवानके मुखारविन्दका दर्शन करती हैं यह "अनुवेणुजुष्टम्" पद से कहती हैं। वेणुको लक्ष्यमें रखकर जो रहती हैं उसे अनुवेणु कहते हैं, अर्थात् वेणुवादनमें तत्पर इस प्रकारके मुखारविन्दका जिन्होंने सेवन किया है अथवा जिन्होंने उनका पान किया है। सेवित अर्थात् जिन्होंने केवल शब्दका ग्रहण किया है और पान अन्तःप्रवेश करानेसे होता है।

केवल शब्द ग्रहण मनोहर होनेसे अथवा शिक्षाके लिये हो सकता है, इस प्रकार "वा" पद विकल्पका बोध कराता है। अनादरकी अभिव्यक्ति तो काकु स्वरसे ही हो जाती है, इस प्रकार मनोहर होनेसे अथवा नादाविष्ट होनेसे ये गोपियां इस मुखका सेवन करती हैं। कामके सम्बन्धसे भी कुछ गोपियां पाक्षिक (स्वल्प अंशमें होने वाला) सेवन करती हैं; यह बात दूसरे विशेषण "अनुरक्तकटाक्ष" इत्यादि पदसे कही गयी हैं। भगवानके जिस मुखारविन्द पर अनुरक्त भक्तोंके कटाक्षोंका पतन होता है वह भगवानका मुख चक्षुवालोंका फल है; इस रीतिसे भगवान के मुखका दर्शन करती हुई गोपियोंके निर्गुण और सगुण भेदोंका निरूपण किया गया ॥७॥

सुबोधिनीजी—केवल रसस्वरूप "चूतप्रवाल" इत्यादि श्लोकमें कहते हैं—(केवल पद से "बर्हापीडम्" श्लोकमें नट पदसे कहा है, उसे विप्रयोग श्रृंगाररस समझना चाहिये।)

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥८॥

भावार्थ—आमके सुकोमल पल्लवसे समलंकृत कानवाले, मोरपिच्छके गुच्छोंसे सुशोभित मस्तकवाले, गलेमें कमलकी माला पहनने वाले, और इन सबके साथ सम्बद्ध पीताम्बरसे विचित्र वेषवाले श्रीकृष्ण और बलदेव ये दोनों सुन्दर दो नटोंके समान कभी गान करते हुए रंगमण्डपतुल्य गोपालोंकी गोष्ठीमें बड़े ही मनोहर प्रतीत होने लगे ॥८॥

सुबोधिनीजी—दोनों कानों पर आमके सुकोमल पल्लव हैं, मस्तक पर मोरपिच्छका गुच्छा है, गलेमें कमलोंकी माला है, इन सबसे मिश्रित परिधान अर्थात् पीताम्बर इत्यादि वस्त्रोंसे विचित्र वेशवाले राम और कृष्ण गोपालोंकी गोष्ठीमें शोभित होने लगे। रसके अभिनयमें अवतारके समान आवेशका भी उपयोग हो सकता है, इसलिये 'विचित्र वेषौ' शब्दका द्विवचनमें प्रयोग किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(कारिका) गुणमाया च वेषार्थमुपयुक्ता भवन्ति हि ।
अतो रसस्याभिनये चत्वारोऽर्था निरूपिताः ॥१॥
रसरूपसुगन्धानां प्रतिष्ठा त्रिषु निश्चिता ।
धर्म्याच्छादनबोधाय मायाप्यत्र निरूप्यते ॥२॥
वस्तुनिर्देशमात्रेण श्रोतृणां काव्यवद्रसः ।
रसवत्फलबोधाय प्रथमं पल्लवो मतः ॥३॥
शास्त्रार्थस्य पविज्ञानाद् भावस्य कलिका भवेत् ।
ततस्तस्य च वैचित्र्यं पुष्पस्थानमिहोच्यते ॥४॥
अहोरात्रं वासना स्यात् तत आच्छादनं स्मृतम् ।
रसोत्पत्त्यर्थमेतावन् निरूपितमितिस्थितिः ॥५॥
आविर्भावे रसास्वादन् नृत्यं शोभा ततो भवेत् ।
अतोतिगुप्तो भगवान् रसत्वं प्रतिपद्यते ॥६॥

गुण और माया ये दोनों वेषके लिये उपयोगी होते हैं, यही कारण है कि रसके अभिनयके लिये चारों अर्थ (पदार्थ) का निरूपण किया है। रुप, रस और गन्धकी स्थिति तीनमें निश्चित है, धर्मिस्वरूप रसके आच्छादनका बोध करानेके लिये मायाका भी यहां निरूपण किया है। केवल वस्तुनिर्देशसे ही श्रोताओंके हृदयमें काव्यके समान रस उत्पन्न होता है। रसवाले फलका बोध करानेके लिये पहले पल्लव कहा है, शास्त्रके अर्थका परिपूर्ण ज्ञान होनेसे भावकी कली उत्पन्न होती है, पीछे उसमें विचित्रता होती है, उसे यहां पुष्पस्थानसे कहा है। रात दिन वासना हो सकती है, इसलिये आच्छादनका स्मरण कराया है, रसके प्राकट्यके लिये इन सबका निरूपण किया है, ऐसी स्थिति है । रसके प्रकट होने पर रसका आस्वादन हो सकता है, नृत्य हो सकता है और शोभा हो सकती है, उससे अति गुप्त स्वरूप भगवान् रसरूपमें परिणत हो जाते हैं। अर्थात् रसस्वरूप हो जाते हैं। सम्पूर्ण रसोंके अभिनिवेशके लिये "विचित्र वेषवाले" इस शब्दका व्यवहार किया गया है। तीनके परस्पर मुख्य और गौण भाव होनेसे नव रसकी निष्पत्ति होती है, इस रीति से रसस्वरूप भगवान का निरूपण कर उस रसके पोषक समाजमें वाद्य और गीतोंका निरूपण करते हैं कि वे दोनों मध्यमें सम्यक् प्रकारसे शोभा पा रहे थे। पशुपालकोंकी गोष्ठी कोई गूढ़ गोष्ठी नहीं थी, यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कह कर रसकी सुलभताका निरूपण किया गया। गीत और वाद्य इन दोनोंके मध्यमें तीनोंकी समानता ही सर्वश्रेष्ठ है। नृत्यकी विशेषता तो कभी ही कभी हुआ करती है, अतएव वाद्य ही कहा है, कभी ऐसा भी होता होगा इस शंकाको दूर करनेके लिये "अलम्" बहुत अच्छी रीतिसे इस प्रकार कहा गया है।

यहां शास्त्रनियामक नहीं होगा, ऐसी शंका हो सकती है, अतः उसके लिये उदाहरण देते हैं। जिस प्रकार रंगभूमिमें दो उत्तम नट शोभित होते हैं, उसी प्रकार, रंगमण्डप अर्थात् शास्त्रके आधारवाला स्थान। जिस प्रकार नट रंगमण्डपमें शास्त्रार्थके अनुसार नाट्य करते हैं, उसी प्रकार ये दोनों भी शास्त्रके अनुसार अलौकिक अभिनय करते हैं; इसीका ज्ञान कराने-के लिये यहां "वर" यह पद रखा गया है। इस प्रकार राजसभाके नृत्यका वर्णन कर सात्विक भावके नृत्यको "क्वचिद्गायमानौ" इस पदसे कहते हैं। अमुक स्थानमें केवल हाथके अभिनय-से ही श्रमरहित दोनों गाते हैं, यह बात भी जग विदित है।

सुबोधिनीजी---इस प्रकार रसका निरूपणकर "रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्" के विचारसे उस रसके आधिदैविक स्वरूपके सम्पादन करनेवाले वेणुनादका निरूपण "गोप्य" इस श्लोकसे करते हैं

गोप्यः किमाचरदयं कुशलंस्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथार्याः॥९॥

अर्थ—हे गोपियां! इस वेणुने कौनसा ऐसा पुण्यकर्म किया है जिसके प्रभावसे गोपिकाओंकी सम्पत्ति स्वरूपा श्रीकृष्णकी अधरसुधाको स्वयं भोग रही है, और उसके भोगने से अवशिष्ट रसको सहृदयोंके समान रोमाञ्चित तथा हर्षाश्रुयुक्त होकर झरना और वृक्ष भोग रहे हैं॥ ९॥

सुबोधिनीजी—"हे गोप्यः" हे गोपियां! यह सम्बोधन पहले कहे हुए "कामरस" अर्थात् श्रुतिको वरदान देनेके समयके रसका बोधक है। यहाँ जानने योग्य या कहने योग्य कुछ भी नहीं है यद्यपि उस वेणुने रसका पान किया नहीं है, तो भी मुख पर वह सम्यक् प्रकारसे दिखाई पड़ता है, अतएव दूसरोंको भी 'वह भोग करता है' ऐसी प्रतीति होती है। पुरुष उसका भोग करे यह कभी भी सम्भव नहीं है, नहीं तो स्वयं भगवान् ही उसका उपभोग करते। इससे यह सिद्ध हुआ कि वह रस स्त्रियोंसे ही भोग्य है, इस बातको "गोपिकानाम्" इस पदसे कहते हैं। अधरसुधासे गोपियोंका सम्बन्ध है, 'गोपिकाओं' इस बहुवचनके सामर्थ्यसे समुदायरूप लक्ष्मीजीका भी इससे सम्बन्ध है यह बात मालूम पड़ती है। श्रीलक्ष्मीजीका अंश भी उन:

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गोपियोंके साथ ही है। लोकमें कहीं भी इस अधरसुधाका भोग प्रसिद्ध नहीं है, सर्वप्रथम बात तो यह है कि ऐसी वस्तुका भोक्ता पुरुष ही नहीं हो सकता, तो फिर दूसरी योनिमें उत्पन्न जीव उसका भोक्ता कैसे हो सकता है ? और उसमें भी वेणु जो चेतनाविहीन है, वह कैसे भोक्ता हो सकती है ? इसके उत्तरमें गोपियाँ इस प्रकार आधिदैविक वेणुके चेतनत्वको सूचित करती हुई कहती हैं। यहाँ सभी गोपियाँ आधिदैविकी ही हैं, इसलिये अपनी गोष्ठीमें आधिदैविक वेणुका विचार संभव है। यही कारण है कि वेणुके भी भोगकी चर्चा की गयी है।

सब कुछ धर्मका फल है, ऐसा वैदिक सिद्धान्त है तो इस सुधास्वादनमें कारणस्वरूप वेणुका कौन सा धर्म (पुण्य) है ? उसीका विचार करते हैं कि वेणुने कौन सा साधन किया है ? सभी धर्म वेदसिद्ध हैं तथा वेदस्वरूप हम लोग स्वयं हैं, अतएव हम लोग जिसे न जानते हों ऐसा धर्म क्या हो ही सकता है ! जिस धर्मसे हम लोगोंका जन्म हुआ है वह धर्म शायद हो सकता है, परन्तु उसमें भी मर्यादा न्यायसे साधनके विरोधका अभाव है। क्योंकि हम लोगोंमें स्त्रीत्व है, वेणुमें तो वह भी नहीं है। इसलिये सन्देह होता है, क्योंकि साधनके विरोध होने पर भी फल तो उसमें प्रत्यक्ष ही दिखाई पड़ता है। यहां उनकी सम्मतिके लिये हे गोपियां ! ऐसा सम्बोधन रखा है। "अयम्" इस शब्दका व्यवहार कर पुल्लिङ्गताका निर्देश किया है, वह बाधक है, "स्म" पद प्रसिद्धिका सूचक है।

वस्तुतः तो वेणुको फल है ही नहीं, यह बात पहले "बर्हापीडम्" इस श्लोकमें कह चुके हैं, तो वेणुको दो में (साधन तथा फलमें) से एकका बाध करना ही चाहिये। अतएव साधनबलके निश्चयसे तो फलका अभावस्वरूप पूर्व पक्ष सिद्ध होता है और फलके बलके विचारसे साधनका अभाव नहीं है, यह सिद्धान्त है; उसे वेणु पदसे कहते हैं, 'व' अर्थात् ब्रह्मानन्द 'इ' अर्थात् विषयानन्द, इन दोनोंको जिसने तुच्छ कर दिया हो उसे 'वेणु' कहते हैं। इस रीति से वेणु जगतको सुख प्रदान करती है अत एव उसमें धर्म है। अधरके सम्बन्धसे ही वह सुधाका उपभोग करता है इसलिये धर्मका निश्चय नहीं भी होता है, तो भी वेणु स्वयं साधन है ऐसा निश्चय होता है। पुष्टिबलके आश्रयसे उसकी सिद्धि हुई है, ऐसा बोध करानेके लिये मर्यादामें दामोदरपदसे हीनताका बोध होता है। जिनके उदर पर दाम अर्थात् रस्सी है ऐसा दामोदर; यह कह कर भगवान् गोपियोंके अधीन हैं इस बातको सूचित किया है। सुधा अधरमें विद्यमान हैं और अधर लोभस्वरूप है, अतएव स्वतः तथा प्रकारान्तरसे भी वेणुके पास साधनका अभाव है, यह बात सूचित की गई है। और सुधापदसे रसभोग कहने की इच्छामें तो जिह्वा की भी अपेक्षा है और वह वेणु में नहीं हैं, इस से वह भी बाधक है ऐसी

प्रतीति होती है। अर्थात् रसनेन्द्रियके न होनेसे वेणुको रसभोग साधनसे प्राप्त है यह नहीं कहा जा सकता।

वेणुसंगीतको (नादको) भोगता है इसमें तो कोई विवाद ही नहीं है, सुधाको भी भोग करता है इसीमें विवाद है। क्योंकि श्रुतिमें कहा है—वाणीने वनस्पतियोंमें प्रवेश किया। वेणुका सुधामें अधिकार नहीं है इसे पहले ही कह चुके हैं, फिर भी यदि भगवान् अधिकार प्रदान करें, तो अधिकार न होने पर भी कभी रसभोग हो सकता है। यहां व्यभिचारमें स्त्रीसिद्धान्तके समान यह दृष्टान्त है, (स्त्रीमें विद्यमान रसका अधिकारी उसका पति ही है, वह स्वयं रसका उपभोग करता है, किन्तु पर पुरुष अधिकारी नहीं है, किन्तु वह स्वेच्छया स्त्रीप्रदत्त रसका उपभोग करता है।) उसी प्रकार यहाँ भी वेणु अधिकारी नहीं है, जो भगवान् प्रदान करें तो पुष्टिके बलसे भगवत्प्रदत्त भोगको प्राप्त कर सकती है। किन्तु गोपियोंके समान ही स्वयं स्वतन्त्रता पूर्वक भोग करती है, यह आश्चर्यकारक है। सो भी सुधापानका निश्चय किस प्रकार किया; इस प्रकारके सन्देहको मिटानेके लिये कहते हैं कि—जिस प्रकार अधर और मुखके सम्बन्धसे हमलोगोंका पान सिद्ध है उसी प्रकार उसने भी किया, ऐसी हमलोगोंकी मान्यता है। फिर हम लोगोंकी अपेक्षा भी उसमें एक विशेषता है कि उसके भोगसे अवशिष्ट रसको झरना और वृक्ष भोगते हैं, (अन्यथा उन्हें रसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है?) वेणु झरना और वृक्षोंका बालक है अतएव अवशिष्ट रस द्वारा अपने माता-पिताका पालन करता है।

इन दोनोंके भोगमें कारणका निर्देश करते हैं कि—झरने रोमाञ्चित हो गये हैं और भीतर पूर्ण आनन्दवाले हो गये हैं, उससे भी आनन्दके विशेष अधिक हो जाने पर रोमाञ्चयुक्त हो गये हैं। उसमें इस प्रकारका निर्णय है—यहाँ रोमाञ्च कमलस्वरूप है, जगतमें वह सर्वश्रेष्ठ है, अतः अन्य हेतुसे आनन्दका रोमाञ्चस्वरूप कमल होता हो नहीं है। अन्य हेतुओंसे तो सेवाल इत्यादिकी ही उत्पत्ति हो सकती है, न कि कमल इत्यादिकोंकी। इससे प्रतीत होता है कि झरनोंने अधरामृतका पान किया है, नहीं तो उनमें लक्ष्मी (सौन्दर्य) का आविर्भाव सम्भव ही नहीं है। "जहाँ जहाँ अतिशय देखा जाता है, वहाँ वहाँ स्वार्थ में उलंघन किये बिना ही वह होता है"। इस न्यायसे सौन्दर्यता वह अकेले ही भोग करता है; यह बात सिद्ध की गयी। झरनावृन्द रोमाञ्चित हो गया, यह केवल दृष्टान्त ही है। वृक्षोंमें अश्रु भी आ गया, मकरन्द दूसरे किसीका रस नहीं हो सकता—वृक्ष भी वैसे ही हो गये, उनके फल रोमाञ्च हैं तथा मधुधारा अश्रु हैं। अन्य किसी भी प्रकारसे इन दोनों (रोमाञ्च और अश्रु) का सम्बन्ध नहीं है। ये दोनों झरना और वृक्षोंमें स्वाभाविक हैं ऐसा नहीं माना जा सकता। क्योंकि कभी होते हैं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कभी नहीं भी होते। वेणुनाद होनेके बाद ही झरनों और वृक्षोंको रोमाञ्च तथा अश्रुदर्शन हुआ है और स्वाभाविक फल तथा मधुधारासे यह रोमाञ्च और अश्रु विलक्षण है।

"यथार्याः" पदसे सूचित करते हैं कि भगवद्धर्मके हृदयमें प्रविष्ट होने पर ही सज्जन पुरुष हर्षित होकर आंखोंसे आँसू गिराने लगते हैं। उसी प्रकार यहां भी अन्तःप्रविष्ट भगवद्-धर्मसे सज्जनोंके समान ही सरोवर और वृक्ष भी रोमाञ्चित होकर कमलस्वरूप रोमाञ्च तथा मधुधारा स्वरूप अश्रुपात करते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि झरना तथा नदियां वेणुकी मातृस्थानीया हैं और तरुवर पितृस्थानीय हैं तथा वेणु द्वारा भोगनेसे बचे हुए अधरसुधा के रसका पान करते हैं।

यहां यह विचाणीय बात है----पहले "वेणुके छिद्रोंको अधरसुधासे भरते हुए" ऐसा कहा गया है, उस वेणुके छिद्र ही मुखस्वरूप हैं। यदि उसमें अधरसुधा भरी जाय तो बिना प्रयासके ही भगवानसे कराये हुए अधरसुधाका पान वह वेणु करता है। इसलिये 'स्वयं भुङ्क्ते' में स्वयं पद व्यर्थ हो जायेगा। तोभी सुधावेणुके लिये नहीं भरी गयी है किन्तु गोपियोंके साक्षात् सुधा योगके अधिकारके लिये वह सुधा भरी गयी है। इसी लिये 'गोपिकानाम्' यह पद रखा गया है,गोपियोंके लिये वेणुके छिद्रोंमें सुधा भरी गयी और उसका उपभोग वेणु करे यह अनुचित है, इसी लिये "स्वयं" पद दिया गया है।

वेणुके भोग कर लेने पर अधरसुधाका पान गोपियोंने किया ऐसा भी समझा जा सकता है। क्योंकि अधर सुधाका वेणुछिद्रसे सम्बन्ध पहले होता है, और मुखरन्ध्र द्वारा जब तक गोपिजन साक्षात् सुधाका भोग करती हैं, तब तक वेणु भोग न करे इसमें कोई कारण नहीं मालूम पड़ता; इस शंकाका समाधान करते हैं कि यहां सब कुछ अलौकिक है अतएव लौकिक-युक्तिसे उसका निर्णय करना उचित नहीं है। यदि ऐसा नहीं मानें तो सरोवर, नदी और पर्वतोंमें किये हुए वेणुकूजनका श्रवण व्रजमें विद्यमान गोपियां ही किस प्रकार कर सकती हैं? और क्या कारण है कि दूसरोंने उसे नहीं सुना? यह सब कुछ "तद्व्रजस्त्रियः" इस श्लोकमें कह दिया गया है। इसलिये यहां सब कुछ अलौकिक है, तथा भगवानकी इच्छा बलवती है और प्रयोजन भी अति भारी है, अतएव अधर सुधाका प्रथम प्रवेश व्रजदेवियोंके कान और हृदयमें ही हुआ वेणुके मुखरन्ध्रमें तो उसका प्रवेश हुआ ही नहीं। इससे गोपियोंको वेणुका उच्छिष्ट ही रस प्राप्त हुआ; इस प्रकारकी शंकाका कोई अवसर ही नहीं है। और भी जिस प्रकार उच्छ्वासकी परिस्थितिमें मुखमें गई हुई वस्तु बाहर ही निकलती है भीतर नहीं जाती उसी प्रकार दूर देशमें स्थित अपनी गोपियोंके कान और हृदयमें व्याप्त करनेके लिये भगवानने बड़ी ही एकाग्रताके साथ अपने मुखसे नादब्रह्मके प्राकट्यमें कारण स्वरूप ऐसे विलक्षण श्वासको प्रकट किया कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जो मार्गके प्रसंगसे छिद्रमें प्रविष्ट हुआ लेकिन अपने भीतर भरी हुई सुधाको अभिमत स्थानमें ही ले गया। अतएव वेणु उस सुधाके भोगमें समर्थ नहीं हुआ। ऐसा होने पर भी मुखमें वेणुका साक्षात् अधरसे सम्बन्ध है, इसी लिये यह संभावना होती है कि वेणुने सुधापान किया और निश्चय भी होता है। अतएव वेणुको उसका भोग है, परन्तु व्रजस्त्रियोंको तो पूर्वोक्त कथनके अनुसार साक्षात् भोग है, इससे सिद्ध हुआ कि वेणुका उच्छिष्ट रसभोग गोपियोंको नहीं है।

यदि यह बात न होती तो जिस प्रकार नदियोंने वेणुके उच्छिष्ट रसका पान किया ऐसा कहा है, उसी प्रकार गोपियोंके लिये भी कहा होता तथा 'गोपिकानाम्' इस पदसे गोपियोंका ही सुधापर अधिकार है ऐसा नहीं कहते और स्वतन्त्रतासे वेणु सुधा का उपभोग करे ऐसी प्रभुकी इच्छा है नहीं, तो नदी इत्यादिमें सुधाका सम्बन्ध हो नहीं सकता। फिर भी यदि हो, तो उनमें भाविनी भगवल्लीला हो नहीं सकती, क्योंकि इस सुधासे सन्बन्ध रखनेवाली ही लीला करनेके लिये भगवानकी इच्छा है। इसलिये भगवान जल तथा स्थल क्रीडा सम्बन्धी सभी पदार्थोंमें इस सुधाका सम्बन्ध कराते हैं, वह नाद द्वारा निकला हुआ वेणुसे उच्छिष्ट सुधारस ही है। ऐसी परिस्थितिमें व्रजस्त्रियोंका तथा वेणुका एक ही समय सुधारसभोग युक्तिसे सिद्ध हो जाता है, अतएव कोई विरोध नहीं है।

और दामोदर स्वरूपसे व्रजस्त्रियोंकी अधीनतामें रहनेवाले भगवान् उनके भोगोपयोगी सब वस्तुओंको सिद्ध कर देते हैं इससे अधिक क्या कहें। मर्यादाके उलंघन करनेवाले समुद्रका कोई निरोध नहीं कर सकता, यह सब हमने संक्षेपमें कहा है। अतएव गोपीजनकी उत्कर्षताको ध्यानमें रखते हुए भगवानके सिवाय अन्य किसीके उच्छिष्टको गोपियां स्वीकार नहीं करतीं थी" ऐसा प्रत्येक वैष्णवको अनुभव करना चाहिये। 'रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया' इस वाक्यमें जो वेणुवादन कहा वह ही यहहै वेणुवादन है ऐसा हम लोग जानते हैं। रन्ध्रमें जो सुधापूरण कहा है वह तो सर्वभोग्या सुधा है और वेणुने जिसका भोग किया है वह सुधा तो देवभोग्या है। अतः उस स्थल पर कहा गया है वह कैसे हो सकता है? ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि गायोंके बुलानेके समय "अनुचरैः गाः गोपकैः नवस्तदा" इत्यादि श्लोकोंमें सुधाका वह कार्य कहा गया है। अन्यत्र भी सुधा दोनों प्रकारकी है श्रीगोपियोंका अधिकार सिद्ध करनेके लिये सर्वभोग्या सुधाका पूरण है तथा वेणु तो देवभोग्याके सुधा अंशका भोग करता है। इन दोनों कारणोंसे प्रारम्भमें ही गोपियोंमें अधिकार प्राप्तिके लिये जो सुधा भरी गयी है उसका बोध करानेके लिये 'गोपिकानाम्' यह पद कहा है और इसीसे सुधाकी सर्वभोग्यता और देवभोग्यता उभया स्वरूपकी सिद्धि हुई ॥ ९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुबोधिनीजी— वृन्दावनविहारमें भगवानके चरणके स्वरूपको वृन्दावनं सखि ! इस श्लोकसे कहते हैं—

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मी ।
गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्ववरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥१०॥

अर्थ—हे सखि ! देवकीजीके पुत्रके चरणसंपर्कसे विशेष सौन्दर्यको प्राप्त करलेनेवाला तथा गोविन्दके वेणुका अनुसरण कर मत्त हो जानेवाले मयूरोंके नृत्यको देखकर श्रीगिरिराजके शिखरकी प्रशंसामें प्राणियोंको मूक बना देनेवाला यह वृन्दावन भूमिकी कीर्तिको बढ़ा रहा है ॥ १० ॥

सुबोधिनीजी— देवताओंका चरण पृथिवीका स्पर्श नहीं करता है तो देवताओंमें श्रेष्ठ देवदेवका चरण पृथिवीका स्पर्श कैसे कर सकता है ? उसमें भी पुरुषोत्तमका चरण किसी प्रकारसे स्पर्श नहीं कर सकता है ? पुरुषोत्तमके अंशस्वरूप पुरुषके आधिभौतिक दोनों चरण पृथिवी हैं। आध्यात्मिक दो चरणोंका इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये वे अतीन्द्रिय हैं, क्योंकि विराट्की गति दिखाई नहीं पड़ती है। आधिदैविक दो चरण आनन्दस्वरूप हैं, उनका भी भूमिसे सम्बन्ध नहीं है तो पुरुषोत्तमके चरणका सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? भूमिमें भी दैत्यभूमि अधम है, उसमें भी स्त्री सम्बन्धिनी दैत्यभूमि वह वृन्दावन ? उसमें भगवानके चरण हैं, अतएव उस भूमिके भाग्यका अभिवादन अपनी उत्कण्ठाका बोधक है। अपना हृदयरूपी स्थान भी भूमि है, स्त्रियोंका हृदय कठिन भी होता है। वनमें पर्वत भी होते हैं और सरस्वती इत्यादि नदियोंके समान भीतर प्रवाहवाली रससे भरपूर नदियाँ भी होती हैं। रोमकी पंक्तिस्वरूप वन भी होता है और वह स्त्रियोंका सम्बन्धी है, इस प्रकार अपने और वृन्दावनमें तुल्यता होने पर भी यहाँ वृन्दावनमें भगवान् चरणकी स्थापना करते हैं, और गोपियोंके हृदयमें स्थापना नहीं करते, इसलिये ईर्ष्यासे वर्णन करतीं हैं। पहले जो वर्णन किया है वह तीन गुणोंसे युक्त वर्णन है, ये तो निर्गुण गोपियाँ हैं अतएव उनमें असूया नहीं हैं, ऐसा कितने ही टीकाकारोंका मत है। 'सखि' यह पद सम्मत्तिके लिये रखा गया है, वैसी सखियाँ बहुत नहीं हैं अतएव एक वचनका प्रयोग किया गया है—असूया पक्षमें भी वैसा ही समझना चाहिये।

अब यहाँ शंका उठती है कि जिस प्रकार भगवानके चरण व्यापीवैकुण्ठमें रहते हैं, उसी प्रकार वृन्दावनमें भी रहते हैं इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है ? इसका उत्तर देते हैं कि वह भूमिके यश को बढ़ाता है, यदि वृन्दावन व्यापीवैकुण्ठमें ही होता तो कुछ भी चिन्ताकी बात नहीं होती, किन्तु यह वृन्दावन पृथ्वीपर है, इसलिये पृथ्वीकी कीर्ति बढ़ाता है। यह भूमि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धन्य है जहाँ वृन्दावन है, वहाँ भगवानकी नित्यस्थिति नहीं माननेवाली गोपियोंका यह वचन है। चरणकमल सर्वदा तो आधिदैविकस्थानमें ही रहेंगे, वृन्दावनमें तो उसका प्रदर्शन समय विशेषपर ही करावेंगे। भगवान् तो अपराधीन हैं अतएव उनके प्रदर्शन करानेमें वृन्दावनकी सामर्थ्य नहीं है। वे भक्तिसे तो सर्वत्र प्रकट होंगे, इससे वृन्दावनकी कोई विशेष अधिक प्रतिष्ठा सिद्ध नहीं होती।

वृन्दावनकी प्रतिष्ठाका कारण "देवकीपुत्रके चरणकमलसे जिसे प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी है," इत्यादि पदोंसे कहते हैं। वृन्दावनको श्रीदेवकीपुत्रके चरणकमलके चिह्नध्वज तथा वज्र इत्यादिसे अधिक शोभा प्राप्त हुई है, अपने स्वच्छन्द सम्बन्धके लिये "देवकीसुत" इस पदका यहाँपर प्रयोग किया है। यह गोपिका नन्दगोपकी सम्बन्धिनी हैं। देवकीजीसे केवल जन्म ही हुआ है, दूसरा कोई भी सम्बन्ध उनके साथ नहीं है, इसीका बोध करानेके लिये "सुत" पद रखा गया है। स्त्रियोंकी प्रधानताके कारण उनके विषयमें कृपाकी भी सूचना की है। पुष्टि-मार्गमें स्त्रियाँ प्रधान हैं ऐसा पहले कह चुके हैं, भक्तिमार्गमें चरणकमल प्रधान हैं, उसमें भी जलमें समुत्पन्न कमल स्त्रियोंमें विद्यमान तापको दूर करनेवाला है ऐसी ख्याति है। ऐसे चरणकमलके भी ध्वज वज्र और अङ्कुश इत्यादि चिह्नोंसे समुत्पन्न शोभा वृन्दावनके सिवाय अन्यत्र नहीं फलती है। केवल वृन्दावनमें ही वह प्रतिफलित होती है, इससे इसकी चरणलक्ष्मी सम्पन्न हुई; अतएव लक्ष्मी भी वहां सर्वदा रहती हैं, इसीलिये जिसने चरणकमलसे लक्ष्मी प्राप्त की है ऐसा वृन्दावन; यह अर्थ सिद्ध हुआ। जब पृथिवी गीली रहती है तब ही ऐसा होता है, अतः भूमिके कारण ही इस लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है। इसलिये वृन्दावन पृथ्वीकी कीर्तिका विस्तारक है, तथा केवल लक्ष्मीको ही प्राप्त किया हो; ऐसी बात नही है, किन्तु भक्ति और ज्ञानको भी प्राप्त है; यह बात गोविन्द इस पदसे कही गयी है।

जब भगवान् मुरलीको बजाते हैं तब मानों काले मेघ गरज रहे हों ऐसी प्रतीति होती हैं और नृत्य करने लगते हैं। जब भगवान् वेणुनाद है, उस समय मोर मत्त हो जाते करने लगते हैं तब देहकी स्मृति नही रह जाती तथा नृत्य भी होने लगता है। इस रीतिसे भक्तिके उद्रेकका वर्णन किया गया। मोर वनमें रहनेके कारण वन स्वरूप ही हैं, इससे वृन्दा-वनकी प्रशंसा की गई है। उस प्रकारके नृत्यको देखकर गिरिराज पर्वतके शिखर पर विद्यमान अन्य प्राणी मूक हो गये। भगवद् भक्ति सहित ज्ञानसे उनके तूष्णी भाव स्वरूप ज्ञानको कहा है। भक्त एक ही हैं दूसरे सब ज्ञानी हैं, किन्तु ज्ञानका फल तो ऊर्ध्वगमन है, अतएव ची गतिवाले) ज्ञानी कैसे हो सकते हैं ? इस शंकाका परिहार स्वभावसे ही नीची चोंचवाले (नी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीगिरिराजके शिखरपर इत्यादि पदसे करते हैं, चाहे कहीं भी बैठे हों वहांसे पर्वत शिखर पर जाकर दिखते हुए स्थिर हो जाते हैं इस प्रकार तूष्णीभाव (मौन) से दीपका अभाव कहा है इससे ही उनके अपने स्थानका त्याग और उर्ध्वगमन ये दोनों बातें कही गई हैं ॥ १० ॥

सुबोधिनीजी—इस प्रकार स्वरूपका वर्णन कर छ प्रकारसे वेणुका वर्णन "धन्यास्तु" इत्यादि छ श्लोकोंसे करतेहैं ।

धन्यास्तु मूढ़मतयोऽपि हरिण्य एता, या नन्दनन्दनमुपात्त विचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सह कृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥११॥

अर्थ—वस्तुतः मूढ़मतिवालीं ये हरिणाङ्गनाएं अत्यन्त भाग्यशालिनी हैं जिन्होंने अपने कृष्णसार मृगके साथ प्रेमपूर्वक समीपस्थ बिलक्षण तथा अवर्णनीय वेषधारी नन्दनन्दन श्रीकृष्णको देखकर तथा उनके वेणुनादको सुनकर तथा श्रीकृष्णके द्वारा की हुई प्रशंसाको स्वीकार किया ।

हरिण्योप्सरसो गावः पक्षिणो नद्य एव च ।
मेघाश्चेति क्रमेणैव कृष्णैश्वर्यादिबोधकाः ॥१॥
ईश्वरः पूज्यते लोके मूढ़ैरपि यदा तदा ।
निरूपाधिकमैश्वर्यं वर्णयन्ति मनीषिणः ॥२॥
वीर्यं देवेषु तत्रापि स्त्रीषु तत्रापि कामतः ।
सान्निध्यै पुरुषाणां च मूर्च्छा तेन ततो महत् ॥३॥
यशो यदि विमूढ़ानां प्रत्यक्षासक्तिवारणात् ।
स्वधर्मं योजयेत् तेषु तदा भवति नान्यथा ॥४॥
तामसाराजसाश्चान्ये गुणातीताश्च रूप्यते ।
वृन्दावनं गुणातीतं मुनयश्चापि पक्षिणः ॥५॥
गोवर्धनश्च त्रितयं गुणातीतमिह स्थितम् ।
तद्गताश्चापि लोकेऽस्मिन्गुणातीता भवन्ति हि॥६॥
श्रियो हि परमा काष्ठा सेवकास्तादृशा यदि ।
ज्ञानोत्कर्षस्तदैव स्यात् स्वभावविजयो यदा ॥७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हरेश्चरणयोः प्रीतिः स्वसर्वस्व निवेदनात् ।
उत्कर्षश्चापि वैराग्ये हरेरपि हरिर्यदा ॥८॥
भक्त्या च तादृशत्वं च सा सेवा सेवकोचिता ॥८१॥

सुबोधिनीजी—हरिणियां, अप्सरायें, गायें, पक्षिवृन्द, नदियाँ तथा मेघगण ये क्रमशः श्रीकृष्णके ऐश्वर्य इत्यादि छ गुणोंके बोधक हैं, जब इस जगतमें मूर्खत्व रूपसे विख्यात मनुष्य भी ईश्वरकी पूजा करते हैं तब चतुर पुरुष निरूपाधिक ऐश्वर्यका वर्णन करते हैं। वीर्य देवगणमें, उनमें भी देवाङ्गनाओंमें उनमें भी कामसे होता है, अतएव पुरुषोंकी समीपतामें देवाङ्गनाएं भी मूर्च्छित हो गई, अतएव वेणुनादका प्रभाव महान् है। अत्यन्त मूढ़ प्राणियोंकी प्रत्यक्षमें आसक्तिको दूरकर उनमें अपने धर्मका सम्बन्ध करदें तभी यशकी सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं। अब तामस, राजस, सात्विक और गुणातीतका निरूपण करते हैं, वृन्दावन गुणातीत है, पक्षिस्वरूप मुनिगण भी गुणातीत हैं, और गोवर्धन भी गुणातीत है, इस प्रकार ये तीनों गुणातीत हैं, ऐसे गुणातीतमें रमण करनेवालीं तथा उसका वर्णन करने वालीं गोपियां भी गुणातीत ही हैं। जब पुरुष वस्तुतः श्रीका भोग करता है उस समय उसके लिये वीणा बजाई जाती है इस श्रुतिन्यायसे सम्पूर्ण भगवदीय पक्षिवृन्द भी सर्वश्रेष्ठ श्रीको प्राप्त करते हैं, क्योंकि जब सेवक भी वैसे हो जांय तब श्रीकी अन्तिम सीमा समझनी चाहिये। ज्ञानका उत्कर्ष भी तभी हो सकता है जब स्वभावका विजय होय अपने सर्वस्वका निवेदन पूर्वक भगवानके चरणकमलोंमें प्रीति होवे इसे ही वैराग्य कहते हैं, वैराग्यमें भी उत्कर्ष तब हो सकता है जब हरिका भी हरि हो जाय। केवल भक्तिसे ही मनुष्य वैसा हो सकता है, सेवकके योग्य ऐसी ही सेवा है। पहले हरिणीके भाग्यका अभिनन्दन धन्यास्तु इस श्लोकसे करते हैं—

सुबोधिनीजी—ज्ञान क्रियाका विशेषण स्वरूप है, क्रियाका भी उत्कर्ष पूजामें है, वह पूजा भी ज्ञानमय पदार्थोंसे भगवत्सम्बन्धिनी होती है। वह ज्ञान यदि न हुआ तो सब कुछ व्यर्थ है, यदि अन्यत्र भी वह हो जाय तब वह ही श्रेष्ट है इस पक्षका आश्रय कर "धन्यास्तु" इसके अन्तर्गत तु शब्दसे पूर्वपक्षका खण्डन करते हैं, तु शब्दसे हरिणियोंको श्रुतिप्रतिपादित भगवत्स्वरूपका ज्ञान नहीं है, उस दोषकी शंकाका परिहार करते हुए कहते हैं कि वे मूढ़मतिवाली हैं तो भी धन्य हैं। यहाँ स्त्रियोंका ही अभिनन्दन किया है, प्रकरणवशात् हरिणोंकी स्त्रियाँ हरिनियाँ यहाँ विवक्षित हैं (उनके विषयमें कहनेकी इच्छा है) सर्वत्र अन्यपूर्वा ही गोपियाँ वर्णन करती हैं ऐसा समझना चाहिये। अपनी असफलताकी भावनासे दीनताके प्रकट होनेपरवर्णन कीहुई सम्पूर्ण सामग्रियोंके साथ भगवान् कृपाकर प्रकट हुए, इस बातका बोध करानेके लिये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"एताः" यह पद दिया गया है, उनके सौभाग्यमें कारणका निर्देश करते हैं कि केवल मृगिनियोंने ही नन्दनन्दनको देखकर तथा वेणुके नादको श्रवण कर, भगवानके द्वारा किये हुए सप्रेम अवलोकनसे की हुई पूजाको अपने विषयमें स्वीकार किया। भगवानने जिनके विषयमें पहले कहा है उन्हींका बोध करानेके लिये "याः" यह पद लिखा है जो नादको भी आनन्दित करे उसे नन्द-नन्दन कहते हैं, भक्तोंके उद्धारके लिये ही "अस्तु" इत्यादि श्लोकमें कहे हुए ब्रह्माके वाक्यसे भगवान् प्रवृत्त हुए हैं, उद्धारका प्रकरण होनेके कारण उन गोपियोंकाभी उद्धार करेंगे ही इसीलिये विचित्र वेषको भगवानने स्वीकार किया है, इससे रसके अभिनयके लिये प्रवृत्त होनेवाले भगवानका वर्णन किया है इस प्रकार स्वरूपसे उद्धारके कार्यको कर्तृता तथा साधनसे भी फलसूचक कार्यकी कर्तृता कही गई है। विचित्र पदसे सम्पूर्ण रसोंका संग्रह हो गया है, ब्रह्मानन्दका उसमें प्रवेश करानेके लिये समीपमें स्वीकार किया है, आकर्ण्य अर्थात् सुनकर, इस श्रवण करनेकी क्रियाको वेणु-बेणुनाद तथा भगवानमें भी अर्थ और शब्द दोनों रीतिसे सम्बद्ध करनी चाहिये। पशु दृष्टिविशेषका ग्रहण नहीं कर सकती है अतएव सुनकर इस पदसे शास्त्रदृष्टि ही कही गयी है पीछे होनेवाली प्रत्यक्ष दृष्टि भी दूसरी दृष्टिके अनुसार ही है—इसलिये विद्यमान रहने पर भी उसकी गणना नहीं की है उसे "सुनकर" इस पदसे कहा है। भगवानके वेणुका नाद सम्पूर्ण असाधारण रसोंसे भर-पूर है, जिस प्रकार रस बाहर न चला जाय इस प्रकारके शब्द विशेषको रणित कहते हैं। ऐसे शब्दको भी अत्यन्त समीप जाकर उन लोगोंने सुना, अतएव उनका दैहिक धर्म निवृत्त हो गया। 'सह कृष्णसाराः' अर्थात् अपने पतियोंके साथ उस वेणुनादको सुना, इस पदसे उनके पतियोंके विरोधकी संभावनाको दूर किया है। "कृष्णसाराः" इस वहुवचन पदसे सापत्न्य-भावका भी परिहार किया है। कृष्ण ही है सार तत्व जिनके उन्हें कृष्णसार कहते हैं, इससे सूचित किया कि गोपगण ऐसे नहीं हैं अर्थात् कृष्णको समझनेवाले नहीं हैं अतएव गोपियोंको सापत्न्य-भावका अभाव है, जो ऐसी बात न होती तो अपनेको (गोपियोंको) साथमें लेकर ही गायोंको चराते। वैसा नहीं करते हैं अतएव पतिगण अभिमान सार है इसलिये कृष्णसारोंको धन्यवाद है, स्नेहपूर्वक अवलोकनसे की हुई भगवद्विषयक पूजाको स्वीकार किया है, नयन ही कमल है, ज्ञानके सुगन्धवाले हैं तथा ज्ञानकी उत्पत्तिका स्थान हैं, यहीं उन नेत्रोंके द्वारा की हुई पूजा ही सर्वश्रेष्ठ है। उस पूजाका ध्यान करना उससे भी श्रेष्ठ है प्रतिपूजा रूपी कृति अर्थात् ही कह दी गई है। अथवा भगवानने उनकी प्रतिपूजा की और उसका धारण हरिणियोंने अपने आत्मामें स्थिर किया। अथवा "सदयावलोकैः" ऐसा पाठभेद मानना चाहिये, दया सहित अवलोकनसे भगवान् और प्राणियोंका इतना कर्त्तव्य है ॥११॥

सुबोधिनीजी—अप्सराओंकी अवस्थाका वर्णन "कृष्णं निरीक्ष्य" इस श्लोकसे करते हैं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवचारुवेषं श्रुत्वा च तत् क्वणितवेणुविचित्रगीतम्।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्न साराः—भ्रश्यत्प्रसूनकवरा मुमुहुर्विनीकः ॥१२॥

अर्थ—स्त्रियोंके नेत्रको आनन्दप्रद वेष धारण करनेवाले श्रीकृष्णको सम्यक् प्रकारसे देखकर, तथा श्रीकृष्णसे बजाये हुए वेणुके विचित्र गीतको सुनकर, विमानमें जानेवाली अप्सराओंका कामातिरेकसे विवेक नष्ट हो गया, सौन्दर्य वृद्धिके लिये केशपासमें गुथा हुआ पुष्पसमूह गिर पड़ा और नीवीबन्धनकी गांठ खुल गयी, तथा वे सब मूर्च्छित हो गयी।

सुबोधिनीजी—"कृष्ण" पदके अर्थसे स्त्रियोंके निरोधकी सूचना की गयी है जब आनन्दका दर्शन हो जाता है तब उसके साधनकी ओर आसक्ति नही होती यह कथन उचित ही है। उसमें भी सदानन्दका दर्शन हो जाय तब उसके साधनकी ओर आसक्ति नही होती इसमें कहना ही क्या है? निरीक्ष्य अर्थात् सम्यक् प्रकारसे देखकर, उसमें "नि" इस उपसर्गके कारण नितराम् अर्थात् सम्यक् प्रकारसे यह अर्थ हो जाता है। इस लिये निरीक्ष्य अर्थात् दिव्य दृष्टिसे देखकर उसमें भी स्वजातीय उद्धारके लिये आये हैं इतनी विशेषता है, "वनितोत्सवचारूवेषम्" इस पदसे कहते हैं कि—स्त्रियोंके उत्सवके लिये ही जिनका सुन्दर वेष है, यह उत्सव विभिन्न प्रकारका है, विभिन्न प्रकारके उत्सवोंमें विभिन्न प्रकारके मनुष्य गण उत्सवके भिन्न भिन्न प्रकारके रसका अनुभव करनेके लिये विभूषित होते हैं, यहां केवल स्त्रियोंका ही उत्सव है। वन अर्थात् जिन्होंने यौवनको प्राप्त किया है अथवा जिन्हें वन सम्यक् रीतिसे प्राप्त हुआ है, उसमें जिनका प्रवेश हो गया है वे फिर लौटकर नहीं आते हैं। "यौ–वन" यहां भी यु अर्थात् मिश्रण, उसके लिये जो वन उसे यौवन कहते हैं, उन्हें ही उत्सव होवे इसके लिये भगवानने सुन्दर वेष धारण किया है,। जिस प्रकार वेषके अनुसार ही रस अथवा पुरुषार्थकी अनुभूति होवे उस प्रकारके सम्पूर्ण आभरणोंसे समलंकृत गोपियां हैं। इससे इस उत्सवमें जिन स्त्रियोंको अलंकार इत्यादिसे उत्सव नहीं हुआ है, उनका अङ्गनात्व विधवाओंके वनितात्वके समान व्यर्थ है। उसमें भी चारू अर्थात् सुन्दर, मनोहर, अन्तः करनेसे भी अलंकारका कारण स्वरूप है। उसमें अन्तः करणके अलंकार प्रेम तथा ज्ञान इत्यादि हैं, जिस प्रकार बाहर रसका अनुभव होता है उसी प्रकार हृदयमें भी प्रेम और ज्ञानरूपी अलंकारोंसे रसका अनुभव होता है, इससे अपसराओंका भगवानके लिये आनेमें सम्पूर्णउपायोंका निर्देशकर दिया। उससे भी विलम्बिके अनुभव करानेवाले तथा भगवानके पास पहुंचानेवाले हेतुको 'श्रुत्वा" इस पदसे कहते हैं। समीप आकार पहलेके समान ही आलापे हुए गीतका श्रवण किया। यहां वेणुके सिवाय अन्य प्रकारके कूजित इत्यादि आलापके संग्रहके लिये "भगवतः क्वणितम्" भगवानका आलाप यह पद दिया गया है। शब्दायमानवेणु भी अर्थात्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस प्रकारके वेणुमें प्रकट होनेवाले विचित्र गीतको सुनकर इस प्रकार यहा पदका सम्बन्ध है एक ही गीतसे मूर्छित हो गयी इस लिये एक वचनका प्रयोग किया है यहां विचित्रका अर्थ "सम्पूर्णरसके लिये" ऐसा करना चाहिये। शृंगारमें ही सम्पूर्णरस है ऐसा नाट्यशास्त्रका सिद्धान्त है। नाट्यशास्त्रकार दूसरे रसकी रसताको ही स्वीकार नही करते हैं। जिस प्रकार महापुरुष लोग सुवर्णका आभरण उपकरण (सामग्री) और भूषण बनाते हैं उसीप्रकार शृंगार रसमें ही अन्य सम्पूर्णरसोंका अन्तर्भाव है यदि ऐसी बात नही हो तो रसिकोंकी उसमें प्रीति उत्पन्न हो ही नही सकती ! अतएव वह गीत भी विचित्र है, यद्यपि वे देवियां हैं देवतास्वरूप हैं, पूज्य हैं ही उसमें भी विमानसे ही उनकी गति है ऐसी विमानसे जानेवाली देवियां भोग्यभी नहीं हैं उसी प्रकार दुःख सहनेका स्वभाव भी नही है तदपि कामातिरेकसे उनका स्वभाव भी नही है तदपि कामातिरेकसे उनका विवेक नष्ट हो गया है पृथिवीपर नही आनेमें, चरणसे नही आनेमें और स्वयं नही आनेमें इस प्रकार हेतुओंका निर्देश किया है। तदनन्तर उनकी जो दशा हुई उसे "मुमुहुः" इस पदसे कहते हैं। उनको असावधानता स्वरूप मोहात्मिका मूर्च्छा हुई। उन्हे केवल भीतर हृदयमें ही मूर्च्छा हुई इतना ही नहीं किन्तु ऊपर और नीचे भी मूर्च्छा हुई। जिनके केश पासमें गये हुए कुसुमगिर पड़े और भीतरके वस्त्र (नीवी) की गांठ खुलगयी, इन पदोंसे कहते हैं कि—केश और वस्त्रकी गांठ खुल जानेसे इस लोक और पर लोकके फलके परित्यागका बोध होता है, देवता होनेके कारण उनका मरण नही हो सका, विमानमें जारहीं थीं इस लिये नीचे नही गिर सकीं, तथा विवेकके नष्ट हो जानेके कारण किसी भी अन्य उपायसे वे स्वयं नही आ सकीं, जो वस्तु भगवानके उपयोगमें नही आ सकती उसमें किसी भी प्रकारसे रस उत्पन्न नही हो सकता। इस प्रकारकी भगवदिच्छासे जो उन्हें रसाभास हुआ, उसका वर्णन यहां किया है। वे अधिकतर देववृन्दके साथ हैं, जिनके पति साथ नहीं हैं वे अपने पतिको खोजनेके लिये ही यहां आयीं हैं, भगवानका दर्शनकर सभी अपनी पूर्वावस्थाको भूल गयीं। भगवान् ही हमारे पति होवें ऐसा उनके मनमें हुआ, तब उन्हें ऐसा होय यह उचित ही है ॥ १२ ॥

सुबोधिनीजी—गायों तथा बछड़ोंका चरित्र "गावः" इस श्लोकसे कहते हैं—

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तंभित कर्णपुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्मतस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः १३

अर्थ—ऊपर किये हुए कान रूपी दोनासे श्रीकृष्णके मुखसे निकले हुए वेणुगीतरूपी अमृतको पीनेवाली गायें तथा स्तनसे गिरते हुए दूधके कवलसे भरपूर मुखवाले बछड़े अपने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नयनोंमें अश्रु कणोंके आ जाने-पर अन्तःकरणमें ही श्रीगोविन्दका स्पर्श करते हुए स्थिर हो गये।

सुबोधिनीजी-- -श्लोकमें लिखित "च" पदसे गायोंकी भी वैसीही दशा हो गयी ऐसा बोध होता है। उत्तम (देवस्त्रियाँ) और मध्यम (गायें) इन दोनोंकी मध्यम (सायुज्यरुपी) अभिलाषाका यहां निरूपण करते हैं। सायुज्यके असम्भावित होनेसे गायोंको यहां मोह होता है। गायें वेणुमात्रमें आसक्त हैं इस लिये वैसा होता होगा इस प्रकारकी शंकाको दूर करनेके लिये "कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतम्" श्रीकृष्णके मुखकमलसे निकला हुआ वेणुगीत यह पद दिया गया है। यदि बहुत मनुष्य बजानेवाले हों और किसीका मुख दिखायी न पड़ता होवे, तथा दूसरेकी अपेक्षा विलक्षणताका अनुसन्धान न होता हो तो भगवानके मुखसे यह वेणुगीत निकला है ऐसा ज्ञान उन्हें कैसे हो सकता है ? इस शंकाका उत्तर स्वयं "पीयूष" इत्यादि पदसे देते हैं वह तो अमृत है अतएव उसका ज्ञान करानेवाला दूसरा कोई न हो तोभी वह स्वयंही प्रतीत होता है। वह सदानन्द पदसे वाच्य है, मुख वाणीका अधिपति है, निर्गमन वाणी है, वेणु अन्य समस्त वस्तुओंको भूला देनेवाला है, और गीत छ गुणवाला है इस प्रकार इन सम्पूर्ण सामग्रियोंका बोध करानेके लिये इन पदोंका व्यवहार किया गया है, अन्यथा "कृष्णगीतपीयूप" इतनाहीं कहते। अन्य गीतरूपी पीयूषकी निवृत्तिके लिये ऊँचे किये हुए कान यह पद कहा गया है। प्रत्येक क्षणमें नवीन कर्ण हैं अतएव प्रत्येकको बहुत कर्णवाला" यह कथन ठीक ही है, "पुट" दोना इस शब्दसे "वे लोग अमृतको पीनेके लिये ही इन कानोंको प्राप्त किये हैं", यह सूचित किया गया है। पत्तेके दोनोंमें फिर दूसरा कोई कार्य नहीं हो सकता, चषक (प्याला) इत्यादिकी तो इसके अतिरिक्त बहुतसे कार्योंमें आवश्यकता पड़ सकती है। दोनें बहुत हैं वे प्रत्येक क्षणमें नवीन रसका बोध कराते हैं व्यवस्था तो पहले कह ही चुके हैं उसे ही यहां भी समझना चाहिये "चूतप्रवाल" इत्यादि श्लोकमें कहा है कि अमुक प्रकारकी प्रणालीसे रस बाहर प्रकट हो सकता है तो भी रसकी नित्यतामें कोई बाधा नही है) शावाः अर्थात् बालकों, हरिण अथवा अन्य-जीवोंके भी अथवा गायोंके ही अथवा गोकुलके जो अति बालक हों वे। स्तनसे गिरते हुए दूधके कवलसे भरपूर मुखवाले बालक-बछड़े। यह दूध गलामेंसे भीतर पेटमें नही जा सकता है इस प्रकारके सन्देहको दूर करनेके लिये "स्म" (इस विषयकी पूर्णजानकारी है) इस पदका प्रयोग किया गया है, गाय और बछड़े वैसी ही स्थितिमें रह गये, दोनोंकी वैसी स्थितिमें कारण यह है कि नयनोंमें अश्रुविन्दुओंके आजाने पर वे लोग अन्तःकरणमें गोविन्दका स्पर्शकर रहे थे, उसमें भी बन्द किये हुए नयनोंसे भगवानका स्पर्श कर रहे थे अर्थात् उन्हें केवल भगवानकी भावना ही नहीं थी; किन्तु भगवान् प्रकट थे यदि ऐसी बात न होती तो अपने साथ भगवत् तुल्यताकी स्फुरणा किस प्रकार हो सकती ? बाहरी अदर्शनमें कारणका निर्देश करते हैं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि अश्रुकला अर्थात् उन गायोंके नयनोंमें अश्रुओंकी कला (कण) व्याप्त होगयी थी, गायोंके हृदयमें प्रकट होनेमें कोई दोष भी नहीं है, क्योंकि भगवान् गायोंके इन्द्र हैं इसका बोध कराने लिये यहां गोविन्द पद रखा गया है ॥१३॥

सुबोधिनीजी – संगके तथा ज्ञानके अभावसे पक्षियोंको वेणुगीतका श्रवण असम्भव है ऐसा मानकर उसकी संभावनाका निरुपण करते हुए "प्रायः" इत्यादि श्लोक कहते हैं—

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षणास्तदुदितं कलवेणुगीतम्।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्ति मीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥१४॥

हे माता ! अत्यन्त प्रसन्नताकी बात है कि मनोहर प्रवालवाले वृक्षोंपर चढ़कर श्रीकृष्णके ही विषयमें अपने समस्त सुखोंको माननेवाले, आंखोंको बन्दकर तथा अन्य प्रकार सम्पूर्णवाणी (व्यापार मात्र) को छोड़कर श्रीकृष्णके द्वारा बजाये हुए अत्यन्त मधुरगीतको जो पक्षिगण सुन रहे हैं उनमें प्रायः अधिक मुनिवृन्द ही हैं ॥१४॥

सुबोधिनीजी—ये गोपियाँ निर्गुण हैं अतएव श्रीयशोदाजीके साथ इनका स्नेह है अथवा श्रीयशोदाजीके घरकी कन्यायें हैं, जिस प्रकार गाय धन और रत्नोंका संग्रह किया जाता है उसी प्रकार पहले उत्तम कन्याओंका भी संग्रह किया जाता था। उन्हें द्रव्यादिसे खरीद कर राजाओंको प्रदान करनेके लिये अपने घरमें पोषा जाता है। वे ही श्रीयशोदा तथा नन्दजीके घरकी कुमारियाँ "हे अम्ब" "हे मा" इस प्रकारका सम्बोधन करके यशोदाजीसे कहती हैं कि ये ये पक्षी मुनिवृन्द हैं, ऐसा निश्चयकर नहीं कहतीं अन्यथा इन पक्षियोंको मुनिस्वरूपमें जाननेवाली यह कन्या कौन है ? इसका सत्य स्वरूप क्या है ? इस प्रकारका सन्देह हो सकता है अतएव ये पक्षिगण अधिकतर मुनिगण है "प्रायः" शब्दका व्यवहार कर दिया गया है। वत शब्द यहाँ खेद अर्थमें प्रयुक्त हुआहै, खेद इस बातका कि ऐसी पक्षियोनि इन्हें क्यों प्राप्त हुई होगी ? अथवा वत शब्दका प्रयोग हर्ष प्रकट करनेके लिये भी हो सकता है, हर्ष इस बातका कि इन पक्षियोंने स्वयं लीलाकी अनुभूति करनेके लिये बड़ा ही सुन्दर उपाय किया है कि पक्षियोनि धारण कर ली है। "हे मा" यह सम्बोधन दयाके लिये है, किसी टीकाकारका मत है कि उनमें भगवानके आविर्भावके कारण यह सम्बोधन है, इस लिये यह बात कहनेवाली गोपिकाके वाक्योंसे पक्षियोंमें अधिकतर मुनि हैं यह सिद्ध हो जाता है। वे पक्षी मुनि हैं मनन करनेवाले हैं अतएव वे जानते हैं कि यहाँ भगवान् प्रकट होंगे, यह ही हेतु है कि इस वनमें श्रीकृष्ण विषयक भावनासे ही जिनका समय व्यतीत हो रहा है, अथवा कृष्णमें ही सुख है जिन्हें ऐसे ये मुनिगण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हैं। श्रीकृष्णका दर्शन करते करते तथा उनसे गाये हुए अत्यन्त अव्यक्त मधुर शब्दवाले वेणुगीतको वृक्षोंकी शाखाओंपर चढ़कर सुनते हैं। जबतक भगवानके वेणुनादका श्रवण नहीं हुआ था तबतक भगवानके रूपका ही दर्शन करते हुए ही वे यहाँ रहते थे; किन्तु जब भगवानने वेणुनादका प्रारम्भ किया तब स्वरूपदर्शन और वेणुनादका श्रवण ये दोनों काम वे करने लगे। फिर जब वहाँसे भगवान् दूर चले गये तब वहाँसे उठकर अन्यत्र चले जाय वेणुनादका रस ही समाप्त हो जायेगा इस बुद्धिसे वहां ही अपने नयनोंको बन्दकर रह गये, शायद वह रस अन्य प्रकारके रसको अथवा लौकिक रसको उत्पन्न कर देगा अथवा इतर रससे उसका प्रतिबन्ध हो जायेगा ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वेणुनाद अव्यक्त मधुर शब्द हैं तथा उसमेंसे मधुरस ही उत्पन्न हो सकता है, अथवा वह वेणुगीत भगवानसे कहे हुए परम अर्थका प्रतिपादन करनेवाला है, इस अर्थमें "तदुदितम्" इसे विशेष्य समझना चाहिये, वेदकी शाखाओंके समान वृक्षोंकी शाखाओंपर चढ़कर गिरने अथवा किसीके मारनेकी शंकाके अभाव होनेसे निश्चिन्तपूर्वक पक्षिगण श्रवण करते हैं, अन्य किसी विषयमें मनका सञ्चार न हो जाय एतदर्थ भगवानके दूर चले जानेपर दर्शनके अभावमें मननका अभ्यास होनेके कारण अपने नेत्रोंको बन्दकर ज्योंके त्यों रह गये। अन्य विषयक वाणीका उन्होंने सर्वथा परित्याग कर दिया। उन्होंने भगवद्विषयक उपयोगी वाणी (व्यापार) का त्याग नहीं किया, इस बातको सूचित करनेके लिये "अन्य" पदका यहां पर प्रयोग किया गया है, पक्षियोंकी यह दशा प्रतिदिन की है यह समझना चाहिये। यदि ऐसी बात न होती तो सुननेके समय बोलनेपर सुननेमें ही विघ्न पड़ता इसी लिये वाणीका अभाव सिद्ध ही है, तो अन्य सम्पूर्ण विषयक वाणीको छोड़कर यह कथन सर्वथा निरर्थक हो जाता। निष्कर्ष यह है कि सर्वदा इस रसका अनुभव हृदयमें होता है ऐसा समझना चाहिये। इससे इस नादकी अलौकिकता और दुर्लभता प्रमाणित होती है। अयोग्यवस्तुओंमें मुनियोंकी आसक्ति होती ही नहीं है। उन्हें वात इत्यादिके भयकी शंका नहीं है इस बातको 'रुचिरप्रवालान्' इस पदसे कहते हैं, वृक्षोंके पल्लव श्रेष्ठ हैं, आम इत्यादि वृक्षोंपर सुशोभित कोमल पत्ते भी नयनके बन्द कर लेनेमें निमित्त हैं, यदि वे आँखोंको बन्द न करें तो प्रवालका दर्शन हो सकता हैं और भगवद्दर्शन में बाधा पड़ सकती है, मुख बन्द करनेमें भी वे कोमल पत्ते ही कारण है यदि मुख बन्द करें तो शायद कोमल पत्तोंको खानेकी इच्छा हो जाय, अथवा वे अधिक हैं इसलिये कोलाहल होने लगे, शकुन विषयक वार्त्तालाप होने लगे अथवा वे मुनि-पक्षी एक दूसरेके प्रति पदार्थोंका निरूपण करने लगे॥ १४॥

सुबोधिनीजी—भगवानके वेणुनादसे नदी इत्यादिमें जो कुछ हुआ उसका वर्णन "नद्यस्तदा" इत्यादि श्लोकोंसे करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेग्यः ।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥१५॥

भावार्थ—उस समय भगवान् मुकुन्दके गीतको श्रवण कर, पानीके भँवरसे सुप्रतीत कामातिरेकसे नष्ट वेगवाली, तथा कमलरूपी उपहारको ली हुईं नदियां आलिङ्गनके लिये स्थिर हो जानेवाले भगवानके दोनों चरणोंको तरङ्गस्वरूप अपने हाथोंसे पकड़ती हैं ॥ १५ ॥

सुबोधिनीजी—जब भगवानने मुनियोंपर अनुग्रह किया और वेणुनादके द्वारा उन्होंने सम्पूर्ण तत्त्व (भगवानके स्वरूपात्मक रसतत्त्व) को जान लिया तब नदियाँ भी "हमलोग भी कृतार्थ होंगीं" इस बुद्धिसे मुनियोंके ज्ञानके उपदेशका निश्चय कर उस प्रसिद्ध मोक्षप्रदान करनेवालेके गीतको सुनकर, जलचकोह, भ्रमण अथवा मूर्छासे सुप्रतीत होनेवाले तथा स्तम्भन कर देनेवाले कामसे नष्ट वेगवाली नदियां हो गयीं अर्थात् उनकी स्वाभाविक गति रुक गई, यहाँ मनोभवका अर्थ विवेक है और अधिकांशमें वह जड़ है, तोभी उसे भगवानके साथ सम्बन्धकी आकांक्षा होती है, (अतएव उसे यह विवेकयुक्त ही समझना चाहिये । केवल स्थितिसे ही उसकी आसक्ति नहीं होती, औषध इत्यादिसे भी उसकी सम्भावना है—उस सन्देहको मिटानेके लिये कहते हैं कि आलिङ्गनके लिये स्थिर होनेवाले भगवानके चरणयुगलको कमलका उपहार रखती हुईं तरङ्गरूपी अपने हाथोंसे पकड़ती हैं, अपने हृदयकमलको भगवानके चरणारविन्दोंमें समर्पण कर भगवानके चरणकमलको स्वयं ग्रहण करतीं हैं, नदियाँ भी देवता हैं अतएव उनके साथ भी दूसरे प्रकारकी लीलाकी सम्भावना नहीं है, अतएव आलिङ्गनके लिये ही वे स्थिर हैं, उसका प्रयोजन यह है कि भगवान् मुरारि हैं, मुर जलके दोषस्वरूप अविद्याको कहते हैं, भगवान् मुरके शत्रु हैं अतएव वे भगवानके चरणके सम्बन्धसे नदीमें विद्यमान उस अविद्याका नाश अवश्य ही भगवान् करेंगे । यह ही कारण है कि नदी इस प्रकार भगवानके चरणकमलको ग्रहण करती है ॥ १५ ॥

सुबोधिनीजी—मेघोंकी जो दशा हुई उसका वर्णन "दृष्ट्वा" इत्यादिसे करते हैं ।

दृष्ट्वातपे व्रजपशून् सहराम गोपैः सञ्चारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम् ।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात्स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥१६॥

भावार्थ—घरमें व्रजके पशुओंको बलराम और गोपोंके साथ सम्यक् प्रकारसे चराते हुए तथा वेणुगीत गाते हुए अपने मित्र भगवान् श्रीकृष्णका दर्शनकर प्रेमसे प्रवृद्ध होकर मेघने अपने शरीरसे कुसुमकी वृष्टिकर उनपर छाया की ।

सुबोधिनीजी—शरदृतुके घाममें व्रजके पशुओंको। जिन्हें सर्वदा छायामें रहनेकी आदत थी जिनकी रक्षा करनेवाले गोप थे और बलराम जिनकी प्रीतिके बढ़ानेवाले थे, राम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्रतातथा गोपोंके साथ (अथवा गोपोंके द्वारा व्रजके पशुओंको) भलीभाँति समस्त सामग्री सहित तथा देवता और वेद सहित, धर्मसहित (पशुओंको) वेणु बजाते हुए अर्थात् सभीके आधिदैविक स्वरूपका उद्दीपन करते हुए प्रभुके उपर मेघने छत्र धारण किया। जब भगवान् सम्पूर्ण शक्तियोंके साथ (ज्ञान क्रिया और धर्म सहित) क्रीड़ा करते हैं तब अवश्य ही छायाकी आवश्यकता रहती है। अतएव भगवानपर स्नेह होनेसे सख्यभावतक पहुँचा हुआ और उनके द्वारा वृद्धिको प्राप्त किया हुआ मेघ अपने शरीरसे अपने मित्र भगवान्पर छत्र धारण किया, कहींपर "प्रवृद्ध मुदित" ऐसा पाठ-भेद है वहां वृद्धि प्राप्त किया हुआ और आनन्दित होनेवाला मेघ ऐसा अर्थ करना चाहिये। अथवा जितनी प्रेमवृद्धि हो सकती है उतने बढ़े हुए प्रेमसे उदित होनेवाले मेघने छत्र धारण किया। पहले इस मेघने सख्यभावतककी भक्ति की थी और अब उसने आत्मनिवेदन स्वरूप भक्ति भी सूक्ष्म जलकी कणिकासे की। प्रेमसे ही वह बढ़ा था, श्रवणसे प्रारम्भ कर सख्यतक पहुँचा अथवा प्रेमके कारण पुष्ट (स्थूल) हो गया था कामरूपी मेघ जैसा चाहे वैसा स्वरूप धारण कर सकता है, अतएव यहाँ भगवानपर स्नेह होनेके कारण अपनी इच्छाके अनुसार स्वरूप धारण किया जिससे सबपर छाया हो सके।

ऐसा करनेसे तो स्वयं उस मेघको ही कष्ट हो सकता है फिर दुःख सहकर ऐसा करनेमें क्या कारण है? इसका उत्तर देते हैं कि ऐसी बात नहीं है अर्थात् उसे दुःख कुछ भी नहीं हुआ, किन्तु उसे महान् आनन्द हुआ, जो जन्मसे ही श्रुतिके द्वारा वृद्धिको प्राप्त करते हैं वे अन्तमें आत्मनिवेदन कर ही देते हैं। लोकोपकारिता, कृष्णाङ्गवर्णत्व तथा जीवनप्रदानकर्तृत्व इत्यादि तीनों गुणोंके समान होनेसे मेघ और भगवानका सख्य है ऐसा बहुतसे टीकाकारोंका मत है, अपना सर्वस्व प्रदान कर दिया इस बातका बोध करानेके लिये "कुसुमबलिभिः सह" कुसुम पंक्तियोंके साथ ऐसा कहा है। मेघने भगवानपर छाया की इस कथनसे साक्षात् लक्ष्मीके साथ भगवानकी क्रीड़ा सूचित होती है। इसी लिये आगे चलकर गोपियोंने भिल्लिनियोंकी स्तुति की है। गोपोंके द्वारा गौओंका चराना, बलभद्रके द्वारा रक्षा, वेणुनादसे प्रबोध और पीछे रमण इत्यादि कारणोंसे मेघ भी भगवानका सखा है अतएव शेषनागके समान छाया करना उचित हो है ॥१६॥

सुबोधिनीजी—वनमें निवास करनेवाली नीच जातिके भील तथा भिल्लिनियोंमें भी भगवानकी समीपतासे भक्ति उत्पन्न हुई इस बातको "पूर्णाः पुलिन्द्यः" इत्यादि श्लोकसे कहते हैं।

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगाय पदाब्जराग श्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥१७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अर्थ—भगवानके दर्शनमात्रसे मदनातुरा पुलिन्दियोंने लक्ष्मीके स्तनके अलंकारस्वरूप तृणवृन्द पर लगे हुए भगवानके चरणकमलके रागरूप कुंकुमको अपने मुख और स्तनपर लेपकर कामजनित दुःखको दूर किया। वे पुलिन्दियां सभी प्रकारसे पूर्ण हैं ॥ १७ ॥

सुबोधिनीजी—सभीकी अपेक्षा भिल्लिनियाँ ही पूर्ण हैं क्योंकि उनका साक्षात् भगवानके चरणारविन्दके रजसे सम्बन्ध है, बहुत भक्त जिनके गुणका गान करें उन्हें उरूगाय कहते हैं, जो भगवान् सम्पूर्ण प्रमाणोंसे सिद्ध हैं, सर्वगुण सम्पन्न हैं उनके दोनों चरणकमलोंमें अत्यन्त अनुरागवती लक्ष्मीने बहुत सोच समझकर जिसका वरण किया है, उस भगवानके चरणारविन्दकी भक्तिमें तत्पर लक्ष्मीके द्वारा तैयार किया हुआ दिव्य कुंकुम अर्थात् जिसे स्वयं लक्ष्मीने भगवानके चरणारविन्दोंमें लगाया है, वह ही कुंकुम फिर अपनी प्रिया श्रीलक्ष्मीजीको रस प्रदानके समय अमुक बन्धनविशेष (सुरतविशेष) में नक्ष्मीजीके ही स्तनोंपर अलंकृत हुआ। अथवा श्रीलक्ष्मीजीने अपने हृदयमें उसे धारण किया, अथवा लक्ष्मीजीने आधिदैविक शक्तियोंके स्तन पर उसे सुशोभित किया, और वहांसे वह भगवानके चरणारविन्दोंमें आया। अथवा तृणसे कुंकुम ही मकरिकापत्र [मगरके समान आकृतिवाला] के समान सुशोभित हो गया, तब वह कुंकुमयुक्त तृण भगवानके हाथोंमें आया और वहांसे वह पृथिवी पर गिर पड़ा, अथवा भगवानके चरणारविन्दोंसे वह तृणोंमें लग गया, ऐसे कुंकुमको देखकर अथवा लक्ष्मीके साथ अथवा शक्तियोंके साथ भगवानके संभोगके दर्शनसे जो अधिक कामपीड़िता हो गई हैं ऐसी भिल्लिनियोंने काम जनित पीड़ाकी शान्तिके लिये अपने मुख और स्तनपर उस कुंकुमका लेप कर कामजनित वेदनाका परित्याग कर दिया, उस कुंकुमको मुख और स्तनोंपर लेपकर वे भिल्लियां भी उपस्थित हुईं तब उस कुंकुमके द्वारा लक्ष्मीके प्रवेश होनेसे उनका भी उपयोग सिद्ध हुआ अतएव वे पूर्ण हैं। यह अत्यन्त विलक्षण भगवानकी कथा है, क्योंकि उस गायपदके कहनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि उन पुलिन्दियोंने भी भगवानका श्रवण किया है, ये बातें वनमें जाने-पर ही हो सकती हैं हम लोगोंसे वनमें जाया नहीं जाता अतएव हमलोग अपूर्ण हैं, इससे विदित होता है कि उन्हें वस्तुतः मानसिक कष्ट स्वरूप काम था ॥१७॥

सुबोधिनीजी—निर्गुण गोपियां "हन्त" इस श्लोकसे कह रही हैं—

हन्ताय मद्रिरबीलाहरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत् पानीय सूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥१८॥

अर्थ—हे अवलाओं! अत्यन्त खेदकी बात है कि राम और कृष्णके चरणारविन्दके स्पर्शसे आनन्दित यह गिरिराज गोविन्दके साथ जल, सुन्दर घास, कन्दरा और कन्द मूल इत्यादि मनोहर वस्तुओंसे उनका महान् सत्कार कर रहा है अतएव वह भगवद् भक्तोंमें श्रेष्ठ है ॥१८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुबोधिनीजी—अब यहाँ सन्देह हो सकता है कि पुलिन्दियोंमें इस प्रकार भगवदीयता कैसे हुई ? इसके उत्तरमें भगवद्भक्तोंके संगसे ऐसा कहनेवाले हैं अतएव गोवर्द्धन पर्वतकी भगवदीयता सिद्ध कर रहे हैं, यहाँ हन्त पद खेदके अर्थको सूचित करता है, यदि हम गोपियां भी गोवर्द्धनपर रहती होतीं तो अपनी भी कामजनित वेदना इसी प्रकार दूर हो जाती, किन्तु हम लोगोंसे वैसा हो नहीं सकता इसी लिये दुःख होता है। यह गिरिराज भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ इसलिये है कि श्रीराम और कृष्णके चरणारविन्दोंके स्पर्श होनेपर उसे अत्यधिक हर्ष होता है, भगवानके भक्तोंमें वह ही श्रेष्ठ भक्त है जो भक्तिमार्गके स्पर्श होते ही आनन्दयुक्त हो जाता है, और वह सात्विक अथवा गुणातीत ही होता है अतएव स्वयं निर्धन होने पर भी वह श्रीराम और कृष्ण इन दोनोंका समादर करता है, और वह भी गाय तथा देवस्वरूप बालक इन सबके साथ सन्मान करता है, यह यहाँ उन सभीका जल, सुकोमल घास, गुफा और कन्द मूल इत्यादि चार पदार्थोंसे अतिथ्य करता है। जल और सुकोमलघास गौवों के लिये, कन्दरा बैठनेके लिये स्थान, कन्द मूल खाने योग्य पदार्थ हैं, "तृणानि भूमिरुदकं" "तृण, भूमि, जल और मीठा वचन" इत्यादि श्लोकोंमें कहे हुए नियमके अनुसार इन चार प्रकारकी सामग्रियोंका अभाव सद्गृहस्थों के घर कभी नहीं होता, अतएव यहाँ भी चारों सम्पत्तियां कही गयीं हैं, उनमें कोमल घास गायों के खाने तथा दूसरोंके बिछानेके उपयोगमें आता है, यहां कन्दरा ही भूमि है, कन्दरापदके प्रयोगसे प्रतीत होता है कि इस समय अधिकतर वहाँ वर्षा होती है इसलिये श्रीराम और कृष्ण गायों और गोपालोंके साथ श्रीगिरिराजकी कन्दराओंमें विराजमान हो गये हैं। सुन्दर (मधुर) वाणीके स्थान पर यहाँ कन्द मूल है, क्योंकि पहले कही हुई सब वस्तुओंके अभावमें ही केवल वाणीसे काम चला लेना चाहिये, भक्तोंमें सन्तोष अधिक होता है, "अबला" इस सम्बोधनसे यह प्रतीत होता है कि हम गोपियोंमें वहां जानेका सामर्थ्य नहीं है, जिन्हें भूंजने की अपेक्षा रहती है उस कन्द और जिन्हें बिना भूजे हुए भी खाया जा सके उन्हें मूल कहते हैं केवल एक ही रसका समर्पण नहीं किया है इस बातका बोध करानेके लिये यहां कन्द और मूल इन दोनों शब्दोंका प्रयोग किया गया है। अथवा एक (कन्द) अन्नस्थानीय और दूसरा [मूल] व्यञ्जन-स्थानीय है। इस प्रकार अन्न और व्यञ्जन भावसे दोनोंका उपादान हुआ है। उनमें भी विभिन्न प्रकारके अनेकों भेद हैं इसे द्योतित करनेके लिये बहुवचनका प्रयोग किया गया है इससे अबलाओंका आक्रोश भी दिखलाया गया है, वह इस प्रकार कि जब भगवान् मखन इत्यादि खाते थे तब मनही मन उदासीन होती थीं अतएव हम लोग अपूर्ण हैं। यह उचित ही है, पहले कही हुई पुलिन्दियां ही ये हैं अतएव "गोवर्द्धनको प्रेरणासे ही वे कन्द-मूल इत्यादि लातीं हैं, ऐसा प्रतीत होता है॥ १८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुबोधिनीजी–हम लोग तो भगवानकी सजातीय गोपियां हैं तो भी हम लोगोंको छोड़कर श्रीगिरिराज और भिल्लनियों पर किस कारणसे भगवान् कृपा करते हैं ? ऐसी शंका हो-सकती है इसके उत्तरमें "गा गोपकैः" इत्यादि श्लोक कहते हैं ।

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्व नैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योग पाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥

अर्थ—अनेक गोपोंके साथ इस वनसे उस वनमें गायोंको हांकते हुए तथा निर्योग और पाश [रस्सी] के चिह्नसे विभूषित उन दोनोंके उदार वेणुनादसे और अव्यक्त पदोंसे चर प्राणियोंमें स्तम्भन और स्थिर प्राणी वृक्ष इत्यादिकोंमें रोमाञ्च उत्पन्न कर देना यह देहधारियोंके लिये विलक्षण बात है ॥ १९ ॥

सुबोधिनीजी—भगवानका चरित्र ही विपरीत है, अर्थात् प्रमेयकी मर्यादाको नष्ट करनेवाला है यद्यपि भगवान् साक्षात् कुछ भी नहीं करते तो भी केवल साक्षी होनेसे ही चर प्राणियोंमें स्तम्भन हो जाता है, (उनकी गति रुक जाती है) और स्थिर प्राणी वृक्षादिकोंमें रोमाञ्च हो जाता है, उसी प्रकार हम गोपियां जो योग्य हैं वे अयोग्य हो जातीं हैं और जो पुलिन्दियां अयोग्य हैं वे योग्य हो जातीं हैं, इस प्रकारकी विपरीततामें तीन हेतुओंका निर्देश करते हैं, अनेक गोपोंके साथ इस वनसे उस वनमें गायोंको हांकते हैं, यह पहला हेतु "वेणु स्वनैः" "वेणु के स्वरोंसे" यह दूसरा हेतु और जिस वेणुमें अव्यक्त मधुर पद है इस प्रकार "कलपदैः" इस विशेषण अथवा "कलपदैः" चरणोंसे यह तीसरा कारण है, गायें प्रत्येक वनोंमें ले जाई जातीं हैं इससे प्रत्येक वनकी शुद्धि सिद्ध होती है, अतएव वनकी निर्दुष्टता सिद्ध होती है वनकी निर्दोषितामें कारण बतलाते हैं कि गायों और गोपोंके सम्बन्धसे उनमें विद्यमान शुद्धि-और धर्म वनमें प्रविष्ट होते हैं, उससे वन दोषविहीन हो जाते हैं । तदनन्तर उदार जो वेणुरव अथवा उदार जो वेणु उसमेंसे वेणुके भोगसे अवशिष्टको वे लोग भोगते हैं अतएव उन्हें रोमाञ्च होवे यह उचित ही है, और जो चलने-फिरनेमें समर्थ हैं, उनके पास जब भगवान् दोहनेके समय आते हैं तब वे चित्तप्रदान पूर्वक अपनेमें विद्यमान अमृतको देनेके लिये तथा उस समय किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित न होय इसके लिये सर्वथा मौन धारण कर लेतीं हैं—कोलाहल होनेकी संभावनासे चलते भी नही हैं, अतएव भगवानके भी चरण [कल] अव्यक्त तथा मधुर होते हैं, क्योंकि वे स्वयं ही उस समय शनैः शनैः चलते हैं, यह गायोंके दोहनेका समय है। जो सखी वहां जाकर भगवानका दर्शन कर आयी थी उसकी सम्मतिके लिये "सख्यः" इस सम्बोधनान्त पदका प्रयोग किया गया है, इससे शरीरधारी चर और अचर प्राणियोंमें विचित्रता प्रतीत होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उस अवस्थाकी अथवा चर प्राणियोंकी गतिको रोक देनेवाली अवस्थाको नियोंगपाश इत्यादि पदसे कहते हैं, जिसके द्वारा सम्यक् प्रकारसे गायों तथा बछड़ोंका सम्बन्ध हो जाय उसे नियोंगपाश कहते हैं, उस नियोंगपाशको जिन्होंने हाथमें ग्रहण किया, अथवा उस नियोगपाशसे जिनने गायोंके दोनों चरणोंको बांध दिया है ऐसे राम और श्रीकृष्ण हैं उन्हें देखकर सभी गोपियां तथा जंगम प्राणियोंको भय लगता है कि राम और कृष्ण हमें भी इसी प्रकार बांधेगें। स्थावरोंसे तो भयके कारण स्वयं ही मधुकी धारा उछल पड़ती है ॥ १९ ॥

सुबोधिनीजी—एवं विधाः" इस श्लोकसे श्रीशुकदेवजी उपसंहार करते हैं कि—

एवं विधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः।
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः॥२०॥

अर्थ—इस प्रकार वृन्दावन विहारी भगवानकी क्रीड़ाका वर्णन-आपसमें करती हुईं गोपिकायें तन्मय हो गयीं।

सुबोधिनीजी—यह क्रीडाओंमेंसे केवल एक ही भेद कहा गया, इस प्रकारकी करोड़ों लीलाएं हैं, उसका कारण भगवतः इस पदसे कहते हैं, "भग" पद वाच्य ऐश्वर्य इत्यादि छः गुण और धर्म-भगवानके मिश्रणसे कोटिशः विस्तार हो जाता है, फिर मर्यादामें तो उस विस्तारकी सीमा भी हो सकती है, किन्तु जब भगवान् वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं और स्वेच्छाचारी हो जाते हैं उस समय उनमें मर्यादाके न होनेके कारण लीलाका विस्तार भी असंख्य हो जाता है, अतएव इस प्रकार उनका परस्पर वर्णन करती हुई गोपियां तन्मय हो गयीं अर्थात् क्रीडामय हो गयीं। जाग्रत तथा स्वप्नावस्थामें भी आसक्ति भ्रमन्यायसे क्रीडाका ही दर्शन किया करतीं थीं, यहां "ययुः" इस पूर्णभूत कालकी क्रियाका प्रयोगकर यह सूचित किया गया है कि संसारमें उनका फिर आगमन हुआ ही नहीं। श्रीवेणुगीत सुबोधिनीजीका हिन्दी भाषान्तर सम्पूर्ण।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वेणुगीत-सारसुधा

भावः प्रेम प्रणयः स्नेहो रागानुरागव्यसनानि।
अङ्कुरकन्दलशाखा पल्लवकलिकाप्रसूनफलानीति ॥ (श्रीहरिरायचरणाः)

विभुविरहवह्नी, वदनावतार, अदेयदानदक्ष, श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणके ग्रन्थरत्नोंमें श्रीमती श्रीसुबोधिनीजीकी अनिर्वचनीयता प्रकाशित हो रही है; क्योंकि मधुरता इतरजनोंको गम्य नहीं है केवल प्रभुकृपासे उनका आस्वादन कर सकते हैं इसीलिये रसिकशिरोमणि श्रीहरिरायजी आज्ञा करते हैं कि जिसने एक बार भी रस सरिता सम श्रीसुबोधिनीजीका दर्शन नहीं किया उनका जीवन पृथ्वीपर व्यर्थ है। प्रातःस्मरणीय शुद्धपुष्टि मार्गके प्रकाशक श्रीगोपीजन ही तदनुसार आदेश करती हैं कि चक्षुधारियोंका यदि परमफल हो तो वह केवल सखागण एवं पशुओंसे घिरे हुए और अनुरक्त कटाक्ष करनेवाले श्रीरसेशके मुखारविन्दका अवलोकन करना यही मात्र है।

श्रीवेणुगीतके 'अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः' इस श्लोकको सुबोधिनीजीमें और कारिकाओंमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि चक्षुधारियोंका अथवा इन्द्रिय धारियोंका सर्वोत्कृष्ट फल प्रभुका दर्शन करना यही है जिस प्रकार मनुष्य आम्र फलको प्राप्त कर उसका सब प्रकार आस्वादन लेनेके लिये अपनी रसना इन्द्रियको उसमें निरुक्त करते हैं उसी प्रकार प्रभुरूप मधुर फलको प्राप्त कर प्रत्येक इन्द्रियोंके निरोध पूर्वक तद्विषयक ही अभिलाषा रखते हुए उसका आस्वादन ग्रहण करना चाहिये।

शृंगार कल्पद्रुमात्मक प्रभुको प्रत्यक्ष देखकर कृपास उपासकने भुजपाशमें बाँधनेके लिये और अधरमें रही हुई दुर्लभ सुधाका पान करनेके लिये आतुर हैं यह स्वाभाविक है। जो जन कामादि विकारोंसे मुक्त हैं निस्वार्थ प्रभुका स्मरण करते हैं वे ही इस मधुर सुधाका पान कर सकते हैं जहाँ पर इन गोपीजनोंमें काम स्थित था वहाँ पर्यन्त उनको सुधाप्राप्ति न हुई; किन्तु जब वह काम निवृत्त हुआ तब उनका हृदय निर्मल हुआ और नादात्मक ब्रह्मानन्दमें मग्न हो श्रीगोकुलमें रहकर भी दिवसमें वृन्दावन स्थित गोचारणपरायण प्रभुके स्वरूपका, क्रियाओंका और प्रभुकी रसरूप लीलाओंका वर्णन परायण हुए इसका नाम ही श्रीवेणुगीत है और वेणुगीतके द्वारा निःसाधन जीव ऐसे सुधात्मक फलका आस्वादन ले सकते हैं अन्यथा नहीं।

<u>अधरसुधा</u>—प्रभुकी अधरसुधा आपके लोभात्मक अधरमें विद्यमान है और वह तीन प्रकारकी हैं उसकी उपयोगिता तथा प्रकार जानने योग्य है। श्रीव्यास भगवानने समाधिमें जिस मधुरताका अनुभव नहीं किया था। उसका अनुभव श्रीमहाप्रभुजीने महद् कृपा करके अस्मदादिकोंको श्रीसुबोधिनीजीके द्वारा करा रहे हैं, प्रभुकी अधरसुधा प्रभुसे भिन्न नहीं हो सकती। <u>'यत्र यत्र सुधात्वं तत्र तत्र प्रभुत्वम्'</u> जहाँ जहाँ सुधा है वहाँ वहाँ प्रभुत्व है यह व्याप्ति यथार्थ है ब्रह्माण्डमें मधुरमें मधुर पदार्थ यदि कुछ है तो वह प्रभु ही हैं अतएव उनका अधर मधुर हो उसमें आश्चर्य नहीं है। जब आपका अधर-मधुर है तब तद्गत सुधा मधुर होनी चाहिए। श्रीअग्निकुमार मधुराष्टककी विवृत्तिमें आज्ञा करते हैं कि <u>'मधुरा श्रीमद्राधा अधरसुधा अधरसुधा च तस्या अधिपतेः'</u>—मधुरा अर्थात् श्रीमती राधा और अधर-सुधा इन उभयके जो अधिपति वे मधुराधिपति हैं और जहाँ मधुराधिपति हैं वहाँ सम्पूर्ण मधुरताकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिसीमा है। श्रीआचार्यचरण सुधात्रयका निरूपण करते हुए श्रीवेणुगीतके श्रीसुबोधिनीजीमें आज्ञा करते हैं कि 'सुधा त्रिविधा देवभोग्या भगवद् भोग्या सर्वाभोग्या च' सुधा तीन प्रकारकी है। देवभोग्या, भगवद्भोग्या और सर्वाभोग्या श्रीवेणुगीतके पंचम श्लोकमें द्रवानन्दात्मक सर्वाभोग्या सुधाका वर्णन किया है। अधरसुधा लोभात्मक अधरपर स्थित होकर यथायोग्य सुधाका दान करते हैं। सर्वाभोग्या सुधा 'श्रोत्रैकपेया' है। देवताओंके द्वारा जिस सुधा का उपभोग हो उसे देवभोग्या सुधा कहते हैं यहाँ पर देव शब्दसे स्वर्गमें विषय भोग करनेवाले देव नहीं समझना; किन्तु 'अत्र देव साक्षिणः' इस वाक्यके अनुसार गोप, गोपीजन, मृग, इत्यादि सब लीलाके अनुभव करनेवाले देव समझना चाहिए। उनके द्वारा जो भोग्य सुधा वह देवभोग्या सुधा है। 'गोप्य किमाचरदय कुशलं स्म वेणुः' इस पद्यमें वर्णित वृन्दावनके तरुलता और सरिताएँ जिस सुधापानसे रोमांचित हुए उसीका नाम देवभोग्या सुधा है 'गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूर नृत्यम्' और 'आकर्ण्य वेणुरणितम्' इत्यादि पदोंमें उसीका वर्णन है।

प्रभु वेणुके सप्तरन्ध्रोंमेंसे नाद द्वारा भक्त हृदयमें जिस सुधाका स्थापनकर स्वयं पान करते हैं उसे भगवद् भोग्या सुधा कहते हैं उसमें भी केश ग्रहण पूर्वक स्वामिनियोंकी अधर सुधा का प्रभु जो पान करते हैं वह मुख्य भगवद् भोग्या सुधा है। इसी प्रकार अन्य वन्यसौंदर्यका उपभोग यमुनादि जलाशयोंमें विहार और पद्म, पुष्पादिका सौरभ ग्रहण इन सबमें भगवद् भोग्या अधरसुधा समझनी चाहिए क्योंकि इन सबको प्रभु वेणुके द्वारा अधरसुधाका पान कराते हैं और पुनः की परिसीमा है। आचार्यचरण सुधात्रयका निरूपण करते हुए वेणुगीतके श्रीसुबोधिनीजीमें आज्ञा करते हैं कि 'सुधा त्रिविधा देव भोग्या भगवद् भोग्या सर्वा भोग्या च' सुधा तीन प्रकारकी है देवभोग्या, भगवद् भोग्या और सर्वाभोग्या। वेणुगीतके पंचम श्लोकमें द्रवानन्दात्मक सर्व भोग्या सुधाका वर्णन किया गया है। अधरसुधा लोभात्मक अधरपर स्थित होनेके कारण यथा योग्य सुधाका दान करती हैं। सर्वा भोग्या सुधा 'श्रोत्रैक पेया' है। देवताओंके द्वारा जब सुधाका उपयोग होता है वह देवभोग्या सुधा कथित है, यहाँ पर 'देव' शब्दसे स्वर्गमें विषयभोग करनेवाले देव नहीं समझना; किन्तु 'अत्र देवा साक्षिणः' इस वाक्यके अनुसार गोप गोपीजन मृग इत्यादि सब लीला अनुभव करनेवाले देव समझना चाहिये। उनके द्वारा जो भोग्य सुधा है देव भोग्या सुधा। 'गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुः' इस पद्यमें वर्णित वृन्दावनस्थ तरु, लता और सरिताएं जिस सुधा पान से रोमांचित हुए उसी का नाम देवभोग्या सुधा है। 'गोविन्द वेणुमनुमत्तमयूरनृत्यम्' और 'आकर्ण्य वेणु रणितम्' इत्यादि पदोंमें उसी का वर्णन है।

सर्वाभोग्या सुधा यह द्रवानन्दात्मक प्रभुका स्वरूप है भगवद मग्नलाल शास्त्रीजी इस पर विवेचन करते हुए लिखते हैं कि उत्तर दलात्मक स्वरूप भोग विप्रयोगानन्द और सर्वाभोग्या सुधा है जिस कर्णमें दुःखकी निवृत्तिके लिये औषधी दी जाती है इस प्रकार द्रवानन्दात्मिका सुधाका प्रवेश नहीं है; किन्तु वह सीधी हृदयमें ही कर्णद्वारा प्रविष्ट होती है और देह इन्द्रियों में फैल जाती है, जब यह सुधा हृदयमें स्थित होकर सर्वत्र प्रसरती है उस समय श्रीगोपीजन वेणुगीतका वर्णन कर सकती हैं। प्रभुका स्वरूप आनन्दमय है और वह आनन्द भी उभयविद है, घनानन्द और द्रवानन्द। जिस प्रकार गुलाबकी कतली यह घन रूप है और उसका शर्बत यह द्रवीभूत है इस दृष्टान्तके लिये मैं पूज्य पं० भट्ट बलभद्र शर्मा भाव चरणका ऋणि हूँ इस प्रकार सर्वाभोग्या सुधा यह प्रभुका द्रवानन्दात्मक स्वरूप है। यह द्रवानन्दात्मक स्वरूप जब कर्णके द्वारा सर्वेन्द्रियोंमें प्रसर जाता है तब स्मरवेगसे अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्मरणवेगस वर्णनकी अशक्ति हुई थी यह स्वतः दूर हो जाती है। इतना ही नहीं; किन्तु उसके साथ अभी तक रमण भी प्राप्त होता है।

देवभोग्या सुधा और भगवद्भोग्या सुधाका भी सर्वाभोग्या सुधासे प्राप्त होता है अतएव वह सुधा सर्वोत्कृष्ट है। वेणुके सप्तरन्ध्रोंमेंसे वेणुका स्पर्श किये बिना नाद ब्रह्मके साथ सम्मिलित तो बाहर निकलती है अतएव वह श्रोत्रैकपेया है उसका साक्षात् उच्छिष्ट अनुभव शक्य नहीं है वह ब्रह्मानन्दसे भी अधिक होकर सबको भगदीयत्व सम्पादन कराती है वस्तुतः वह आनन्द सारभूता है। वह साधनताको कदापि प्राप्त नहीं होती, अतः नादब्रह्ममें उस सुधाको मिलानेके लिये नादोत्पत्ति स्थान वेणुमें और पुनः उसके सप्तरन्ध्रोंमें अमृतरूप प्रभु पूरित करते हैं। सुधात्रिविध, ऐश्वर्यादि षट्गुण और धर्मी रूपसे एक्कीस प्रकारकी है। जब सर्वाभोग्यासुधा वेणुरन्ध्रका स्पर्श किये बिना नादद्वारा बाहर प्रसरती है तब वह वेणुके मध्यभागको भी स्पर्श नहीं करती केवल नाद द्वारा बाहर प्रवाहित होकर कर्णद्वारा हृदयमें प्रसरित होकर वर्णन करनेवाले श्रीगोपीजनोंके मुखमें आकर उसे सुभोग्य करते हैं। अन्तःकरणमें प्रवेश नहीं होता वहाँ पर उसे सुधाभागकी योग्यता प्राप्त नहीं होती। अतएव इसके लिये रस पूरसे सुधांशकें प्रवेशार्थ वेणुगीतमें वर्णन है।

वेणुनाद रसात्मक है उसका प्रवेश धाराके समान कर्णद्वारा हृदयमें होता है। यही द्रवानन्दात्मक वेणुनाद निष्काम हृदयवाले भगवदीयोंका सर्वन्द्रियोंमें द्रव्यप्रवाहके भाँति विविध रसके भाव निर्भरसे पुष्टरस पूर्वरूप हो जाता है और उससे वह समानशील व्यसनवाले भक्तजन द्वारा किया हुआ परस्पर नादस्वरूपके वर्णन रूपसे बाहर प्रगट होता है। उसका अस्तित्व सर्वत्र है। व्रजांगनाओंका एक भी हृदय उस सुधासे आर्द्र हुए बिना नहीं रहा। उस 'श्रोत्रैकपेया' अधरसुधाके प्रवेशसे निरोधकी सिद्धि होती है। अतएव सम्भोगनीय श्रीगोपीजनोंसे भिन्न गोपियोंमें गोपवृन्दमें और सर्वत्र जो निरोध है वह सम्भोगनीय गोपीजनोंकी अपेक्षा स्वल्पतर है। अतएव श्रीमद् भागवतमें भक्तिनिरूपणके पश्चात् निरोधका वर्णन है। अतएव इस प्रकारका अपूर्व सुधापान करनेके लिये श्रीगोपीजन वेणुनादका वर्णन करती हैं। इसीलिये श्रीसुबोधिनीकार श्रीमहाप्रभुजी एतदर्थ मेव वर्णनम्' इस प्रकार आज्ञा करते हैं मुख्य रसका दान करनेकी प्रभुकी इच्छा है, इस कारण 'बर्हापीडं नटवरवपुः' इस श्लोकके उत्तरार्द्धमें वर्णित सुधा सम्बलित वेणुद्वारा श्रीगोपीजनोंको वश करके अधरामृतका पान करते कराते प्रभु वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं और 'श्लिष्यति कामापि' इत्यादि प्रकारकी स्वच्छन्दता सम्पादित करते हैं। प्रभुका इस प्रकारका स्वाच्छन्द्य नन्दालयमें सम्मिलित नहीं है।

—गोस्वामी श्रीव्रजनाथ शर्मा

नोटः--(भगवच्छास्त्रनिष्णात नित्यलीलास्थ शास्त्री मगनलालजी द्वारा अनुवाद तथा भगवदीय चुन्नीलाल द्वारा प्रकाशित गुजराती ग्रन्थसे अनुवादित)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुष्टिमार्गीय वैष्णव समाजको शुभसमाचार

हिन्दी भाषामें दो ग्रन्थमाला

श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीके उपदेशामृत एवं सिद्धान्त-जिज्ञासुओंके लिये जिन ग्रन्थोंके भाषान्तरकी आवश्यकता है उनमें श्रीसुबोधिनीजी, निबन्ध तथा पत्रावलम्बन गायत्री भाष्यादि तथा आपश्रीके वंशज तथा अनुयायी विद्वान् एवं महानुभावोंके विविध ग्रन्थोंको हिन्दी भाषामें प्रकाशित कर सामयिक सेवा करनेका मेरा मनोरथ है। आदरणीय पं० श्री माधव शर्माजीने अपना वृहद् पुस्तकालय तथा प्रकाशित ग्रन्थ जिनका मूल्य ५,०००) पाँच सहस्र रुपया है वह प्रदान कर तथा अपने लिखित तथा प्रकाशित समस्त ग्रन्थोंके प्रकाशनका अधिकार देकर मुझे प्रोत्साहित किया है और जबतक उनका शरीर है तबतक ग्रन्थोंका अनुवाद लिखानेका वचन दिया है।

इसी प्रकार अन्य विद्वानोंके लिखित ग्रन्थोंका भी प्रकाशन चालू रखने के लिये अभी दो ग्रन्थमालायें चालू किया है। (१) श्रीसुबोधिनी ग्रन्थमाला (२) "श्रीकृष्णवल्लभ ग्रन्थमाला" इन दोनों ग्रन्थमालाओंका नियमित प्रकाशन करनेकी सम्पूर्ण व्यवस्था करके सम्प्रदायमें जिन ग्रन्थोंकी आवश्यकता है उनका प्रकाशन होता रहेगा। श्रीसुबोधिनी ग्रन्थमालाके लिये ५) रुपया तथा श्रीकृष्णवल्लभग्रन्थमालाके लिये ५) रुपया कुल १०) रुपया भेजकर श्रीकृष्ण कार्यालय के १००० हजार सदस्य बनानेकी योजना की गयी है। प्रतिमास १-२ ग्रन्थ इन दोनों ग्रन्थमालाओंके प्रकाशित होते रहेंगे।

श्रीसुबोधिनी ग्रन्थमालाका प्रथम पुष्प गोपीगीत कलकत्तेके वैष्णव महानुभावोंकी आर्थिक सहायता से प्रकाशित हुआ। युगलगीतके प्रथम संस्करण तथा रासपंचाध्यायीके प्रथमाध्यायके ३२ पेजके लिये आर्थिक सहायता पटना निवासी बाबू नन्दकिशोरजी अग्रवाल तथा वाराणसी निवासी सेठ जगमोहनदास नागर एवं बाबू ग्वालदासजी मुदड़ा द्वारा प्राप्त हुई।

अब युगलगीत और भ्रमरगीतके सुबोधिनीजीका भाषान्तर इसी प्रकार प्रकाशित करना आवश्यक है इसके लिये श्रीसुबोधिनी प्रेमी वैष्णव महानुभाव आर्थिक सहायता प्रदान कर तथा सदस्य बनकर इस नाम सेवामें सहायक बनेंगे। सहायकोंका भगवत्स्मरण प्रकाशित करेंगे।

रासपंचाध्यायीके सुबोधिनीजीका हिन्दी भाषान्तर इसी रूपमें प्रकाशित करनेका मनोरथ है जिसके लिये भगवदीय बाबू गिरधरदासजी मुदड़ा तथा नित्यलीलास्थ भगवदीय जमनादासजीके भगवदीय पुत्रोंने आर्थिक सहायता प्रदान करनेका वचन दिया है इसी प्रकार सुबोधिनी ग्रन्थमालाके प्रकाशनके लिये आर्थिक सहायताकी आवश्यकता है।

विश्ववाणी प्रेस, रामापुरा वाराणसी।